LINGUISTICS

BA HINDI

FIFTH SEMESTER

Core Course

(2011 ADMISSION)

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

CALICUT UNIVERSITY P.O., THENJIPALAM, MALAPPURAM, KERALA -673 635

177

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

BA HINDI

Core Course – ***LINGUISTICS***

Notes Prepared by

DR. T.A. ANAND
ASST. PROFESSOR OF HINDI
PG DEPT. OF HINDI AND RESEARCH CENTRE
GOVT. ARTS AND SCIENCE COLLEGE
KOZHIKODE- 18

Scrutinised by

Dr.PAVOOR SASHEENDRAN,
38/1294, APPUGHAR,
EDAKKAD P.O.,
CALICUT

Lay out :
Computer Section, SDE

©
Reserved

भाषाविज्ञान

Module 1

भूमिका - भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं। भाषा का सर्वांगीण और वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषा विज्ञान का विषय है। दूसरे शब्दों में 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।'

परिभाषा –

डॉ. देवेन्द्र शर्मा ने भाषा विज्ञान को इस तरह परिभाषित किया है- "भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा-विशिष्ट, कई और सामान्य का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रयोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।"

डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल के शब्दों में – 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा की उत्पत्ति और विकास से लेकर भाषा का सर्वागीण अध्ययन, विवेचन तथा विश्लेषण किया जाता है तथा तार्किक निष्कर्ष निकाल जाते हैं।'

भाषा विज्ञान के अध्ययन के रूप – एककालिक(Synchromic), ऐतिहासिक(Historical), तुलनात्मक(Comparative), व्यतिरेकी(Contrastive), अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान(Applied)।

भाषा विज्ञान की शाखाएँ – ध्वनिविज्ञान(Phonology), रूपविज्ञान(Morphology), वाक्य विज्ञान(Syntax), अर्थ विज्ञान(Semantics)।

Module 2

ध्वनिविज्ञान – ध्वनिविज्ञान की शाखाएँ - औचारणिक ध्वनि विज्ञान(Articulatory), सांवहनिक ध्वनि विज्ञान(Acoustic), श्रावणिक ध्वनि विज्ञान(Auditory)। **उच्चारण अवयव,**

ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया, ध्वनियों का वर्गीकरण - स्वर(vowels), व्यंजन(consonants), मान स्वर(cardinal vowels)।

ध्वनि लक्षण अथवा स्वन गुण, आघात(accent), बलाघात(stress accent), तान(ton), सुर(Pitch), सुरलहर अथवा अनुतान (intonation), अक्षर(syllable), (Glide)

स्वनिम विज्ञान(Phoneme) - स्वनिम(Phoneme), उपस्वन(Allophone), हिन्दी स्वनिमों का वितरण, स्वनिम के भेदोपभेद –खंड्य स्वनिम(segmental), खंड्येतर स्वनिम(supra-segmental)।

Module 3

रूपविज्ञान (Morphology) **:** रूपिम अथवा रूपग्राम(Morphemes), रूपिम के भेद

वाक्यविज्ञान (Syntex) **:** वाक्य के भेद एवं प्रकार(Classification of sentence)

Module 4

अर्थविज्ञान(Semantics) **:** वाक्य(Sentence), अर्थ विस्तार(Expansion of Meaning), अर्थ संकोच(Contraction of Meaning), अर्थादेश(Transference of Meaning)

1 weightage question

प्र) स्वरयंत्र किसे कहते हैं?

उ)श्वास-नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल से कुछ नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव होता है जिसे ध्वनि-यंत्र या स्वरयंत्र कहते हैं।

प्र)स्वर-तंत्री क्या है?

उ) स्वरयंत्र में पतली झिल्ली के बने दो लचीले परदे या कपाट होते हैं जिन्हें स्वर-तंत्री या स्वर-रज्जु कहते हैं।

प्र) स्वर-यंत्रमुख किसे कहते हैं?

उ) स्वर-यंत्र में पतली झिल्ली के बने दो लचीले परदों, स्वर-तंत्रियों या स्वर-ओष्ठों के बीच के खुले भाग को स्वर-यंत्रमुख या काकल (glottis) कहते हैं।

प्र) कौवा किसे कहते हैं?

उ) ऊपर जीभ के स्वरूप का मांस का छोटा-सा भाग उस स्थान पर होता है, जहाँ से नासिका-विवर और मुख-विवर के रास्ते फूटते हैं। इस छोटी जीभ को 'कौवा' या अलिजिह्व कहते हैं। इसका कार्य कोमल तालु के साथ अभिकाकल की भाँति कभी-कभी मार्ग अवरुद्ध करना है।

प्र) तालु किसे कहते हैं?

उ) मुख-विवर में ऊपर की ओर तालु है जिसके कंठ-स्थान और दाँतों के बीच में क्रम से चार भाग हो सकते हैं- 1) कोमल तालु, 2) मूर्द्धा, 3) कठोर तालु तथा 4) वर्त्स।

प्र) ध्वनिविज्ञान किसे कहते हैं?

उ) बोलचाल के समय भाषा का सम्प्रेषण स्वन अर्थात् ध्वनि के माध्यम से ही होता है। ध्वनि (स्वन) के अध्ययन से सम्बद्धित शास्त्र या विज्ञान को ध्वनिविज्ञान कहते हैं। अंग्रेजी में इसे फ़ोनेटिक्स और फ़ोनॉलॉजी (Phonetics, Phonology) कहते हैं।

प्र) स्वन विज्ञान किसे कहते हैं?

उ) बोलचाल के समय भाषा का सम्प्रेषण स्वन अर्थात् ध्वनि के माध्यम से ही होता है। भाषा-विशेंष की ध्वनियों की व्यवस्था, इतिहास तथा परिवर्तन आदि का अध्ययन स्वन विज्ञान द्वारा किया जाता है। हिन्दी में 'फ़ोनॉलॉजी' के लिए स्वन विज्ञान, ध्वनि-प्रक्रिया, स्वन-प्रक्रिया या स्वनिमविज्ञान आदि नाम प्रयुक्त हैं।

प्र) फ़ोनेटिक्स या स्वानिकी में किस पर अध्ययन होता है?

उ) फ़ोनेटिक्स का प्रयोग ध्वनि के भाषा-निरपेक्ष अध्ययन के लिए भी किया जाता है जिसमें सामान्य रूप से ध्वनियों का उच्चारण, वर्गीकरण आदि आते हैं। हिन्दी में इस प्रसंग में 'फ़ोनेटिक्स' के लिए मुख्यतः स्वानिकी, ध्वनिविज्ञान, ध्वनिशास्त्र अथवा स्वनविज्ञान आदि कहते है।

प्र) मान स्वर किसे कहते हैं?

उ) मान स्वर का अर्थ है मानक स्वर या आदर्श स्वर। ये किसी भाषा विशेष के नहीं होते हैं बल्कि विभिन्न भाषाओं के स्वरों के उच्चारण हेतु स्थान निर्धारण के लिए बनाए हुए मानदंड हें। इन स्वरों के प्रतिपादन का श्रेय जानवालिस तथा हेलबैग को है।

प्र) प्रयत्न किसे कहते हैं?

उ) ध्वनियों के उच्चारण के लिए हवा को रोककर या और कई प्रकार से विकृत करना पड़ता है। इसी क्रिया को 'प्रयत्न' कहते हैं।

प्र) व्यंजनों के उच्चारण प्रयत्न को कितने भागों में बाँटा जा सकता है?

उ) व्यंजनों के उच्चारण प्रयत्न से किए जाते हा। इनके उच्चारण प्रयत्न को निम्नलिखित 22 भागों में बाँटा जा सकता है।

प्र) ध्वनि विज्ञान में आघात के कितने भेद पाए जाते हैं?

उ) ध्वनि विज्ञान में आघात के दो भेद पाए जाते हैं - बलाघात और सुर।

प्र) सुरलहर किसे कहते हैं?

उ) सुरलहर सुरों के उतार-चढ़ाव या आरोह-अवरोह का क्रम है जो एकाधिक ध्वनियों की भाषिक इकाई के उच्चारण में सुनाई पड़ता है।

प्र) विसर्प किसे कहते हैं?

उ) मूल स्वर के उच्चारण में जीभ अचल रहती है तो संयुक्त स्वर में चल। इसीलिए संयुक्त स्वर को विसर्प कहते हैं, अर्थात जिसके उच्चारण के समय जीभ सरकती रहे।

प्र) ध्वनियों का वर्गीकरण कितने भागों में किया जाता है?

उ) भाषा विज्ञान में हम भाषा की ध्वनियों को दो भागों में बाँट सकते हैं। - स्वर और व्यंजन।

प्र) स्पर्श व्यंजन किसे कहते हैं?

उ) जिनके उच्चारण -समय में मुख के दो भिन्न अंग-दोनों ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ और ऊपर के दाँत, जीभ की नोक और दाँत आदि एक –दूसरे से स्पर्श की स्थिति में हों, वायु उनको स्पर्श करती हुई बाहर आती हो, तो उन्हें स्पर्श व्यंजन कहेंगे, यथा- क्, ट्, त् , प् वर्गों की प्रथम चार ध्वनियाँ।

प्र) संघर्षीं व्यंजन किसे कहते हैं?

उ) जिनके उच्चारण में मुख के दो अवयव एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं और वायु निकलने का मार्ग संकरा हो जाता है, तो वायु घर्षण करके निकलती है, उन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं, यथा- ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, श्, ष्, आदि।

प्र) नासिक्य व्यंजन किसे कहते हैं?

उ) जिन व्यंजनों के उच्चरण में दाँत, ओष्ठ, जीभ आदि के स्पर्श के साथ वायु नासिका-मार्ग से बाहर आती है, उन्हें नासिक्य ध्वनि कहते हैं, यथा- पाँचों वर्गों की पाँचवीं (ङ्, ञ्, न्,ण्, म्) ध्वनियाँ।

प्र) घोष ध्वनियाँ किसे कहते हैं?

उ) जिन ध्वनियों के उच्चारण-समय में स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट होती हैं और निःश्वास वायु निकलने से उसमें कंपन हो उन्हें घोष ध्वनियाँ कहते हैं। प्रत्येक वर्ग की अंतिम तीन (तीसरी, चौथी, पाँचवीं)ध्वनियाँ – ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, आदि।

प्र) अघोष किसे कहते हैं?

उ) जिन ध्वनियों के उच्चारण-समय स्वर-तंत्रिय्यों में कंपन न हो उन्हें अघोष ध्वनि कहते हैं। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो (पहली, दूसरी) ध्वनियाँ – क्, ख्, च्, छ् आदि।

प्र) अल्पप्राण किसे कहते हैं?

उ) जिन ध्वनियों के उच्चारण में सीमित वायु निकलती है,

प्र) स्वनिम किसे कहते हैं?

उ) स्वनिम उच्चरित भाषा का वह न्यूनतम अंश है जो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट करता है।

प्र) रूपिम अथवा रूपग्राम क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उ) भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई को रूपग्राम अथवा रूपिम कहते हैं।

प्र) अक्षर के कितने प्रकार हैं?

उ) अक्षर दो प्रकार के होते हैं-

1. बद्धाक्षर (Closed syllable) – जिसके अंत में व्यंजन हो। जैसे - आप्, एक्, सीख्।
2. मुक्ताक्षर (Open syllable) – जिसके अंत में स्वर हो। जैसे – जो, या, खा, ले।

प्र) खंड्य स्वनिम क्या है?

उ) जिन स्वनिमों को अलग-अलग खंडित किया जा सकता है उन्हों खंड्य स्वनिम कहते हैं। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। इसके दो भेद हैं- स्वर स्वनिम, व्यंजन स्वनिम।

प्र) रूपिम के कितने भेद हैं?

उ) रचना और प्रयोग की दृष्टि से रूपिम प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैंः (क) मुक्त रूपिम, (ख) बद्ध रूपिम।

प्र) मुक्त रूपिम क्या है?

उ) वह रूपिम जो अकेले या अलग भी प्रयोग में आ सकते हैं उन्हें मुक्त रूपिम कहते हैं। (उपर्युक्त वाक्य में रसोई,घर, साफ़ इसी प्रकार के हैं।) ये अलग, मुक्त या स्वतंत्र रूप से भी आ सकते हैं (जैसे रसोई बन चुकी है) और अन्य रूपिमों के साथ भी आ सकते हैं (जैसे रसोईघर)।

प्र) बद्ध रूपिम क्या है?

उ) वह रूपिम जो अलग नहीं आ सकते उन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं। (जैसे 'ता' एकता, सुन्दरता या 'ई'घोड़ी, लड़की, खड़ी आदि।)।

प्र) अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के कितने भेद हैं?

उ) अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैंः **(क)** अर्थदर्शी रूपिम, **(ख)** सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम।

प्र) अर्थदर्शी रूपिम किसे कहते हैं?

उ) अर्थदर्शी रूपिम वह है जिनका स्पष्ट रूप से अर्थ होता है और अर्थ व्यक्त करने के अतिरिक्त जो और कोई कार्य नहीं करते। व्याकरणिक या प्रायोगिक दृष्टि से ये कई प्रकार के हो सकते हैंः जैसे क्रिया(हो, खा, भू), संज्ञा(राम, किताब), सर्वनाम(वह, तुम), विशेषण(अच्छ्, बड़, सुन्दर) आदि।

प्र) अभिहितान्वयवाद क्या है?

उ) इस मत के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य में 'पद' का महत्त्व है। अतः पद की सत्ता होती है, वाक्य की नहीं, क्योंकि पदों को जोड़ने से ही वाक्य बनता है। यदि पद ही नहीं तो वाक्य कैसे बन सकता है। इसलिए पद ही महत्त्पूर्ण है।

प्र) अन्विताभिधानवाद क्या है?

उ) इस विचारधारा के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य तोड़ने से ही पद बनते हैं। अतः वाक्य का ही महत्त्व है। पद तो इसका एक हिस्सा मात्र है। पद की अलग से कोई सत्ता ही नहीं है। इसलिए इस विचारधारा के समर्थकों को वाक्यवादी भी कहते हैं।

प्र) भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्य के लिए आवश्यक गुण कौन-कौन से हैं?

उ) भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए 5 बातें आवश्यका हैंः सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति।

प्र) वाक्य के कितने अंग हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) वाक्य के दो अंग होते हैंः

1) उद्देश्य **Subject** - वाक्य काक वह अंग अथवा अंश जिसके बारे में वाक्य के शेषांश में कुछ कहा गया हो।
2) विधेय **Predicate** - वाक्य का वह अंश है जो उद्देश्य के बारे में सूचना दे। इसमें क्रिया और उसका विस्तार होता है।

प्र) व्यतिरेकी या विरोधी वितरण क्या है?

उ) कभी कभी समान परिवेशों में दो भिन्न स्वनों को पाते हैं और एक स्वन की भिन्नता के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन देखा जाता है। 'बाप', 'पाप', इन दोनों शब्दों को देखें तो दोनों में 'आप' है और 'आप' के पूर्व 'ब्' और 'प्' का प्रयोग हुआ है और इन दोनों को आपस में बदलते तो शब्द के अर्थ में भिन्नता पैदा होती है। इसलिए समान परिवेश में अर्थ में व्यतिरेक पैदा करने के कारण यह व्यतिरेकी है।

प्र) परिपूरक वितरण क्या है?

उ) कभी कभी एक ही स्वन भिन्न-भिन्न परिवेश में भिन्न प्रकार से उच्चरित होता है। इस भिन्न प्रकार के उच्चारण से शब्द के अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पडता। उदाः किताब (क् + इ + त् + आ + ब्) और कुमार (क् + उ + म् + आ + र्) को लिये तो 'क्' के स्थान बदलने पर अर्थ परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए यह परिपूरक वितरण है।

प्र) मुक्त वितरण किसे कहते है?

उ) कभी-कभी सर्वनाम या उपस्वन बिना अर्थ परिवर्तन किये एक दूसरे के स्थान पर आ जाते हैं। इसे मुक्त या स्वच्छंद वितरण कह सकते हैं। उदाहरण के लिए, बहुत-से हिन्दी शब्दों में बहुत-से लोगों के उच्चारण में क-क़ (कानून – क़ानून) या ग-ग़ (गरीब-ग़रीब) मुक्त वितरण में है। बिना अर्थ बदले कोई भी आ सकता है। इस प्रकार आने वाली ध्वनियाँ (स्वन) मुक्त परिवर्तन (**free variant**) कहलाती हैं।

प्र) खंड्य स्वनिम क्या है?

उ) जिन स्वनिमों को अलग-अलग खंडित किया जा सकता है उन्हें खंड्य स्वनिम कहते हैं। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है।

प्र) खंड्येतर स्वनिम किसे कहते हैं?

उ) जिन स्वनिमों को अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता उन्हें खंड्येतर स्वनिम कहते हैं। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं।

प्र) वाक्यों के कितने प्रकार हैं?

उ) भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य के मुख्यतः दो आधारों को मान्यता दी है। 1) आकृतिमूलक, 2) रचनागत।

प्र) अर्थ विज्ञान किसे कहते हैं?

उ) भाषा के अर्थ पक्ष का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन ही अर्थ विज्ञान है। अर्थविज्ञान वर्णनात्मक (संरचनात्मक), ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक इन तीनों प्रकारों का होता है।

प्र) सरल वाक्य की विशेषता क्या है?

उ) सरल वाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है। जैसे 'मोहन गया'। ऐसे सरल वाक्य के भी पाँच भेद होते हैं, जैसेः अकर्मकीय, एक कर्मकीय, द्विकर्मकीय, कर्तृ पूरकीय, कर्म पूरकीय।

प्र) उपवाक्य की विशेषता क्या है?

उ) जब एक ही वाक्य में दूसरा वाक्य मिला हो तो एक मुख वाक्य होता है तथा दूसरा गौण वाक्य होता है। इस प्रकार दो वाक्यों के योग से बना वाक्य उपवाक्य कहलाता है। इस उपवाक्य के भी दो प्रमुख प्रकार होते हैं- प्रधान उपवाक्य (मुख्य उपवाक्य), आश्रित उपवाक्य (गौण उपवाक्य)।

प्र) तालू कहाँ स्थित है?

उ) मुँहविवर की ऊपरी दीवार को तालू कहते हैं। इसका विस्तार आगे की ओर दाँत से पीछे अलिजिह्वा के मध्य भाग तक होता है।

प्र) कठोरतालू किसे कहते हैं?

उ) वर्त्स के पीछे की कठोर खुरखुरी जगह कठोरतालू है। यह हड्डियों से निर्मित है। ऊपर से एक पतला मांस आवरण होने पर यहाँ का स्पर्श कठोर लगता है।

प्र) मूर्धा किसे कहते हैं?

उ) यह मुँहविवर के अन्दर का सबसे ऊँचा स्थान है। कठोरतालू और कोमलतालू के बीच की जगह को ही मूर्धा कहते हैं।

प्र) कोमलतालू किसे कहते हैं?

उ) मूर्धा के पीछे अलिजिह्वा के आगे तालू का कोमल भाग कोमलतालू कहलाता है। सचमुच यह मुँहविवर और नासिकाद्वार के बीच एक किवाड-का-सा काम करता है।

प्र) भाषा विज्ञान में जीभ की विशेषता क्या है?

उ) मुँहविवर के निचले हिस्से में जीभ की स्थिति है। उच्चारण अवयवों में सबसे प्रमुंख अंग है जिह्वा। जिह्वा की गति और उसके अंगों के कार्य-वैविध्य के कारण उसके पाँच भाग हैं- जिह्वानोक, जिह्वाग्र, जिह्वापश्च, जिह्वामध्य, जिह्वामूल।

प्र) अलिजिह्वा किसे कहते हैं?

उ) नासिकाद्वार और मुँहविवर के बीच स्थित छोटी-सी जीभी को अलिजिह्वा कहते हैं। जरूरत के अनुसार नासिका-विवर को पूर्ण या आंशिक रूप से बन्द करना अलिजिह्वा का कर्म है।

प्र) अभिकाकल कहाँ स्थित है?

उ) यह श्वासनालिका के ऊपर झुका हुआ एक मांसपिण्ड है, जो खाना खाते समय और पानी पीते समय श्वासनालिका को बन्द कर देता है। इसको स्वरयंतत्रमुख आवरण भी कहते हैं।

प्र) स्वरयंत्र कहाँ स्थित है?

उ) श्वासनालिका के ऊपरी भाग में एक छोटा-सा बक्स जैसा अंग है, जिसे स्वरयंत्र कहते हैं। स्वरयंत्र के अन्तर स्वरतंत्रियाँ हैं। ये स्वरतंत्रियाँ पतली, झिल्ली के अवारण से बनी हैं। स्वरतंत्रियाँ रंगमंच के पर्दों के समान दो हिस्सों में बाँटी हैं।

प्र) काकल किसे कहते हैं?

उ) स्वरतंत्रियों के बीच के अवकाश को काकल कहते हैं। आवश्यकतानुसार स्वरतंत्रियाँ खुलती या बन्द होती हैं। अतः काकल के विस्ता में भी अन्तर होता है।

प्र) मुँहविवर किसे कहते हैं?

उ) कंठ से लेकर ओंठ तक फैला हुआ मुँह का भाग मुँहविवर है। इसके नीचे जीभ है ऊपर एक दीवार की तरह तालू है। मुँहविवर में ही ध्वनियों को विभिन्न काकार मिलते हैं।

प्र) नासिकाविवर किसे कहते हैं?

उ) मुँहविवर के ऊपर अलिजिह्वा के पीछे से नासिकाग्र तक फैले हुए विवर को नासिकाविवर कहते हैं।

प्र) कंठ (ग्रसनी) किसे कहते हैं?

उ) स्वरयंत्र, जिह्वामूल और नासाद्वार के आरंभ के बीच की जगह को कंठ कहते हैं।

प्र) अर्थ किसे कहते हैं?

उ) शब्द के उच्चारण से श्रोता को जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति को अर्थ की संज्ञा दी जाती है। यह प्रतीति हमें ज्ञानेंद्रिय और मन के द्वारा होती है। अर्थ भाषा का अभ्यंतर रूप है।

प्र) अर्थ विस्तार किसे कहते हैं?

उ) अर्थ-विस्तार का सामान्य भाव है- अर्थ क्षेत्र का विस्तृत होना। जब कोई शब्द एक समय सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता रहा हो और बाद में उसकी अर्थ-सीमा का विस्तार हो जाए, तो उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं।

प्र) अर्थ-संकोच किसे कहते हैं?

उ) अर्थ-संकोच की प्रक्रिया अर्थ-विस्तार के पूर्ण विपरीत है। जब किसी शब्द का पूर्ण-विस्तृत अर्थ परवर्ती काल में संकुचित रूप में प्रयुक्त होने लगता है, तो उसे अर्थ-संकोच कहते हैं।

प्र) अर्थादेश क्या है?

उ) एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का प्रचलन अर्थात् जब कोई शब्द पहले एक अर्थ में प्रचलित हो और बाद में किसी अन्य अर्थ में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे अर्थादेश कहते हैं।

प्र) उच्चारण मात्रा के आधार पर स्वरों को कैसे विभाजित किया गया है?

उ) उच्चारण में जितना समय लगता हैं उसे मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार के स्वर मिलते हैं। हिन्दी में इनकी संख्या मुख्यतः तीन हैं - ह्रस्व (अ, इ, उ); दीर्घ – (आ, ई, ऊ); प्लुत - ओ३ (ओ३म्)।

प्र) मौखिक स्वर किसे कहते हैं?

उ) कोमल तालु और अलिजिह्वा कभी नासिक-विवर के मार्ग को पूरी तरह बंद कर देते हैं, जिससे हवा केवल मुख मार्ग से निकलती है। ऐसे में उच्चरित होने वाला स्वर मौखिक होता है। मौखिक - अ, आ, ए आदि सभी स्वर।

प्र) अनुनासिक ध्वनि किसे कहते हैं?

उ) कोमल तालु और अलिजिह्वा कभी नासिकाविवर कभी मध्य स्थिति में रहते हैं, जिससे वायु मुख तथा नासिका दोनों ही मार्गों से निकलती है। ऐसी ध्वनि को अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। अनुनासिक स्वर - आँ, एँ।

2 weightage questions

प्र) भाषाविज्ञान के अध्ययन से क्या-क्या लाभ हैं ?

भाषाविज्ञान के अध्ययन से निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।

1) अपनी चिरपरिचिता भाषा के सम्बन्ध में जिज्ञासा की तृप्ति।
2) प्राचीन तथा प्रागैतिहासिक संस्कति पर प्रकाश।
3) किसी जाति या सम्पूर्ण मानवता के मानसिक विकास का प्रत्यक्षीकरण।
4) प्राचीन साहित्य के अर्थ, उच्चारण तथा प्रयोग आदि से सम्बद्ध समस्याओं का समाधान।
5) पूरे विश्व के लिए एक कृत्रिम भाषा का विकास।
6) मातृभाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के सीखने में पूर्णता, सरलता और शीघ्रता।
7) एक भाषा से दूसरी भाषा में सटीक अनुवाद में सहायता।
8) भाषा, लिपि आदि में सरलता एवं शुद्धता आदि की दृष्टि से परिवर्तन-परिवर्द्धन करने में सहायता।
9) किसी भाषा के लिए लिपि, उसका व्याकरण, कोश तथा उसे पढ़ाने के लिए पाठ्य-पुस्तक बनाने में सहायता।
10) तुतलाहट, हकलाहट, अशुद्ध अच्चारण, अशुद्ध श्रवण आदि दूर करने में सहायता।
11) मनोविज्ञान, प्राचीन भूगोल, शिक्षा, समाजविज्ञान, दर्शन तथा इंजीनियरिंग, कम्यूनिकेशन आदि के अध्ययन में सहायता।

प्र) एककालिक - बहुकालिक भाषाविज्ञान ।

उ) भाषाविज्ञान का एक रूप है – एककालिक भाषाविज्ञान। आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक सस्यूर ने सर्वप्रथम भाषाविज्ञान के इस प्रकार की और भाषाशास्त्रियों का ध्यान दिलाया था और इन्हें क्रमशः 'सिनक्रॉनिक' और 'डाइक्रॉनिक' कहा था। इसे हिन्दी में एककालिक और बहुकालिक भाषाविज्ञान कहते हैं। एककालिक से आशय भाषाविज्ञान के उस प्रकार से है जिसमें किसी भाषा का एक कालबिंदु पर अध्ययन करते हैं। ऐसे ही कई कालों के सुश्रृंखलित अध्ययन को बहुकालिक कहते हैं। एककालिक को 'समकालिक भाषाविज्ञान' तथा बहुकालिक को 'कालक्रमिक भाषाविज्ञान' भी कहते हैं। एककालिक अध्ययन में भाष के किसी एक काल के अध्ययन-विश्लेषण पर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है। उदाहरण के लिए - भक्ति काल में प्रयुत्क हिन्दी भाषा के अध्ययन को हम एककालिक कह सकते हैं, जबकि भक्ति काल और आधुनिक काल में प्रयुक्त हिन्दी भाषा के अध्ययन को हम बहुकालिक भाषाविज्ञान कहते हैं।

प्र) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान।

उ) भाषाविज्ञान का एक रूप है ऐतिहासिक भाषाविज्ञान। इसमें भाषा के इतिहास या विकास का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक अध्ययन को कालक्रमिक भी कहते हैं। यह अध्ययन मूलतः अलग न होकर किसी भाषा के कई कालों के एककालिक या बहुकालिक अध्ययन की ही सुव्यवस्थित श्रृंखला होती है, जिससे उसका विकास स्पष्ट हो जाता है। अध्ययन के इस रूप से संबद्ध भाषा विज्ञान को ऐतिहासिक भाषा विज्ञान कहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा, व्याकरण, पद, प्रयोग आदि का ऐतिहासिक अध्ययन।

प्र) तुलनात्मक भाषाविज्ञान ।

उ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं-19वीं सदी में शुरू हुआ जिसमें दो या अधिक भाषाओं की तुलना करके ध्वनि, शब्द तथा व्याकरण की समानताओं का पता लगाते थे तथा उनके आधार पर दो या अधिक भाषाओं को एक स्रोत से विकसित होने का निर्णय करते थे। तुलना मूलतः दो प्रकार की हो सकती हैः एककालिक रूप की तथा इतिहास की। एककालिक तुलना में सम्बद्ध भाषाओं के किसी एक काल पर हमारा ध्यान कैन्द्रित रहता है, तो ऐतिहासिक तुलना में संबद्ध भाषाओं के कई कालों के इतिहास या विकास की तुलना होती है। इस अध्ययन से संबंधित भाषा विज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान कहलाता है। भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार इस तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही थीं।

प्र) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान ।

उ) बीसवीं सदी के दूसरे चरण के अंत में इन अंतरों की उपयोगिता का पता भाषाशिक्षण और अनुवाद के प्रसंग में चला और भाषाओं में अंतर मालूम करने के लिए 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' नाम से भाषाविज्ञान का एक अलग प्रकार ही मान लिया गया। 'व्यतिरेकी' का अर्थ है 'विरोध'। एक भाषाभाषी जब दूसरी भाषा सीखता है तो दोनों भाषाओं की समानताएँ भाषा सीखने वाले के लिए समस्या या कठिनाई नहीं उत्पन्न करतीं, दोनों में अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर वे अंतर मालूम कर लिए जाते हैं और फिर उन पर बल देकर भाषा सिखाने में सुविधा होती है। ऐसे ही अनुवाद में भी दो भाषाओं के अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं, समानताएँ नहीं। इस प्रकार भाषाशिक्षण और अनुवाद के लिए व्यतिरेकी भाषाविज्ञान बहुत उपयोगी है।

प्र) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान क्या है?

उ) सैद्धांतिक भाषाविज्ञान से प्राप्त संकल्पनाओं तथा तथ्यों का अन्य क्षेत्रों जैसे भाषा सिखाने, कोश बनाने, अनुवाद करने, किसी रचना का शैलीय विश्लेषण करने तथा किसी व्यक्ति का उच्चारण-दोष ठीक करने आदि) में व्यावहारिक प्रयोग 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' कहा जाता है। इसके अंतर्गत मुख्यतः भाषाशिक्षण, कोशकला, अनुवाद, शैलीय विश्लेषण तथा वाग्दोष सुधार आदि आते हैं।

प्र) वाक्यविज्ञान

उ) वाक्य, भाषा की मूलभूत सहज इकाई है,क्योंकि भाषा का प्रयोग अभिव्यक्ति या अर्थ-प्रेषण के लिए होता है और अभिव्यक्ति या अर्थ-प्रेषण वाक्य के आधार पर ही संभव है। वाक्य विज्ञान में भाषा की इस मूलभूत इकाई का अध्ययन किया जाता है, जिसमें वाक्य की परिभाषा, किसी विशिष्ट भाषा में या सामान्य रूप से भाषाओं में वाक्यगठन के अन्वय,पदक्रम, पदलोप, पदबंध-रचना, फ्रेज-रचना तथा उपवाक्य-रचना आदि विषयक नियमों, वाक्यों की रचना तथा अर्थ के आधार पर वर्गीकरकण, वाक्य-रचना में परिवर्तन की दिशाओं आदि का अध्ययन होता है। वाक्य के अध्ययन-विश्लेषण द्वारा प्रायोगिक भाषा विज्ञान के लिए विशेषतः अनुवाद तथा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में बड़े उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वाक्य का अध्ययन एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और व्यतिरेकी इन चारों प्रकारों का हो सकता है।

प्र) रूपविज्ञान क्या है?

उ) किसी भाषा के वाक्यों को खंडित करने पर हमें जो इकाई मिलती है उसे 'पद' या 'रूप' कहते हैं। उदाहरण के लिए 'मैंने उसे मारा' में 'मैंने', 'उसे' तथा 'मारा' ये तीन रूप हैं। रूप विज्ञान में पद या रूप का अध्ययन करते हैं। शब्दों या धतुओं के आधार पर रूपरचना कैसे होती है (जैसे पढ् से पढ़ा, पढ़ेगा, पढ़ता, पढ़ो आदि; तू से तुम, तुझे, तुम्हें आदि) रूप बनाने के लिए शब्द या धातु में किस-किस प्रकार के तत्त्व जोड़ने पड़ते हैं (जैसे उस्+ए= उसे; पढ़+आ= पढ़ा आदि), रूपों के द्वारा क्या-क्या काम (काल-द्योतन, लिंग-द्योतन, वचन-द्योतन आदि) लिए जाते हैं, भाषा की रूपरचना में परिवर्तन किन-किन कारणों से तथा किन-किन दिशाओं में होते हैं आदि कुछ वे मुख्य बातें हैं, जिनका रूप विज्ञान के अंतर्गत विचार किया जाता है। रूपों का अध्ययन भी एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और व्यतिरेकी इन चारों प्रकार का हो सकता है।

प्र) शब्दविज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उ) पद को खंडित करने पर में दो तत्त्व मिलते हैं- 'शब्द' तथा 'संबंधतत्त्व'। 'शब्दविज्ञान' शब्द का वैज्ञानिक अध्ययन है। शब्द विज्ञान में शब्द की परिभाषा, किसी भाषा के शब्द-समूह में विभिन्न तत्त्व (जैसे तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि) किसी भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन के कारण तथा एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी इन चारों प्रकार का हो सकता है।

प्र) ध्वनिविज्ञान

उ) ध्वनिविज्ञान में ध्वनियों (स्वनों) का अध्ययन करते हैं। इसमें ध्वनि की परिभाषा, उच्चारण-अवयव, ध्वनियों का उच्चारण, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि परिवर्तन के कारण, परिवर्तन की दिशाएँ, बलाघात, सुरलहर आदि का विचार किया जाता है। ध्वनि के अध्ययन के दो रूप हैं। एक तो मात्र सैद्धांतिक है जिसमें 'जिन उच्चारण-अवयवों से ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है', उनके बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। साथ ही 'स्वर तथा व्यंजन में अंतर', स्वर-व्यंजन का वर्गीकरण, 'अक्षर', 'बलाघात', तथा 'अनुतान' आदि पर विचार करते हैं। ध्वनिविज्ञान का दूसरा रूप भाषा-सापेक्ष होता है जिसमें भाषा – विशेष की ध्वनियों पर विचार करते हैं। इसमें 'भाषा-विशेष की ध्वनियों का वर्गीकरण', 'उस भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों की व्यवस्था', उसमें 'बलाघात' 'अनुतान' 'संधि संहिता' आदि का विवेचन आता है। अंग्रेजी में प्रथम को 'फोनेटिक्स' तथा दूसरे को 'फोनॉलोजी' कहते हैं। हिन्दी में 'फोनेटिक्स' को स्वनविज्ञान तथा 'फोनॉलोजी' को स्वनप्रक्रिया कहते हैं। वक्ता ध्वनियाँ उच्चारित करता है, फिर वायु के द्वारा वे ले जाई जाती हैं और फिर श्रोता उन्हें सुनता है। इन्हीं तीन प्रक्रियाओं के आधार पर ध्वनि विज्ञान की औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान, सांवहनिक ध्वनि विज्ञान तथा श्रावणिक ध्वनि विज्ञान तीन उपशाखाएँ होती है जिनमें क्रमशः ध्वनियों के उच्चारण, ध्वनियों की लहरें और उनका संवहन तथा श्रवण-प्रक्रिया पर विचार किया जाता है।

प्र) उच्चारण अवयव

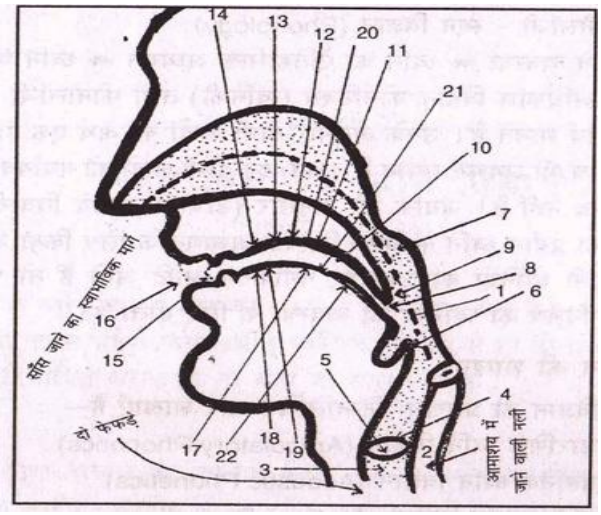

1. उपालिजिह्व (Pharynx,गलबिल, कंठ, कंठमार्ग)
2. भोजन – नलिका Gullet
3. स्वर-यंत्र (कंठ-पिटक, ध्वनियंत्र Glottis)
4. स्वरयंत्र-मुख (Glottis , काकल)
5. स्वर-तंत्री (Vocal chord, ध्वनि-तंत्री)
6. स्वरयंत्र-मुख-आवरण (Epiglottis, अभिकाकल, स्वरयंत्रावरण)
7. नासिक-विवर (Nasal Cavity)
8. मुख-विवर (Mouth cavity)
9. अलिजिह्व (Uvula, कौआ, घंटी, शुंडिका)
10. कंठ (Gutter)
11. कोमल तालु (Soft Palate)
12. मूर्द्धा (Cerebrum)
13. कठोर तालु (Hard Palate)
14. वर्त्स (Alvrola)
15. दाँत (Teeth)
16. ओष्ठ (Lip)
17. जिह्वामध्य (Middle of the tongue)
18. जिह्वानोक (Tip of the tongue)
19. जिह्वाग्र (Front of the tongue, जिह्वा-फलक)
20. जिह्वा (Tongue)
21. जिह्वापश्य (Back of the tongue,जिह्वापृष्ठि, पश्च जिह्वा)
22. जिह्वामूल (Root of the tongue)

प्र) अर्थविज्ञान

उ) भाषा के अर्थ-पक्ष का अध्ययन अर्थविज्ञान का विषय है। इसमें 'अर्थ क्या है', 'अर्थ का निर्धारण कैसे होता है', 'वह कितने प्रकार का होता है', 'अर्थ में परिवर्तन के कारण और उनकी दिशाएँ', 'समानार्थता', 'विलोमार्थता' तथा 'बहुअर्थता' आदि का अध्ययन करते हैं। अर्थविज्ञान में अर्थ का अध्ययन एककालिक भी हो सकता है, कालक्रमिक भी, तुलनात्मक या व्यतिरेकी भी। साथ ही इसके तहत शब्द उपसर्ग, प्रत्यय, शब्दबंध, पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि सभी के अर्थ का अध्ययन किया जाता है।

प्र) ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया को संक्षेप में संझाईए।

उ) जब दो वस्तुअओं के आपस में टकराने से वायु में कंपन हो और कर्ण-पटह तक पहुँचने से इसका अनुभव हो, तो उसे ध्वनि कहते हैं। प्रत्येक ध्वनि में कंपन होती है और प्रत्येक कंपन में ध्वनि होती है। मानव भाषा और उसके ध्वनियों का उत्पादन फेफड़े की सफाई करने के पश्चात् वायु श्वास-रूप में श्वास-नलिका के पथ से बाहर चलती है। स्वर-यंत्र के पूर्व इसमें किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता। सर्वप्रथम हम स्वर-तंत्रियों की सहायता से इसे मनमाना रूप देते हैं। उससे आगं चल कर आवश्यतानुसार नासिका-विवर, मुख-विवर या दोनों से थोड़ा-थोड़ा निकालते हैं। ऐसा करने में कौवा भी हमारी सहायता करता है। वहाँ से मुख-विवर में जाने वाली हवा का हम आवश्यकतानुसार जिह्वा, कंठ, तालु, दाँत और ओष्ठ के सहारे इच्छित रूप देकर बाहर निकालते हैं जो बाहर आकर ध्वनि की संज्ञा पाती है। साथ ही आवश्यक होने पर इस के एक अंश को नासिका-विवर से निकालते हैं।

प्र) ध्वनिविज्ञान की शाखाएँ कौन-कौनसी हैं?

उ) ध्वनि अध्ययन के तीन आधार हैं- उच्चारण, प्रसरण या संवहन तथ श्रवण। इसी आधार पर ध्वनिविज्ञान की मुख्यतः तीन शाखाएँ मानी जाती हैं। -

1) औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान (Articulatory Phonetics) – भाषा का उच्चारण हमारे वाग्यंत्र से होता है। मानव के वाग्यंत्र में 22 उच्चारण अवयव काम में आते हैं। इस शाखा में उच्चारण और उससे संबद्धित बातों का अध्ययन होता है।
2) सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान (Acoustic Phonetics) – जिसमें उच्चारण के फलस्वरूप बनने वाली ध्वनि-लहरों का अध्ययन होता है। इस अध्ययन में प्रायः काइमोग्राफ़, स्पेक्टोग्राफ, ऑसिलोग्राफ आदि यंत्रों से सहायता ली जाती है।

3) श्रावण्कि ध्वनिविज्ञान (Auditory Phonetics) - इसमें ध्वनियों के सुने जाने का अध्ययन होता है।

पहली शाखा का सम्बन्ध बोलने वाले से, तीसरी का सुनने वाले से, और दूसरी का ध्वनियों की वाहिनी तरंगों, उनके स्वरूप तथा गति आदि से, अर्थात् दोनों शाखाओं के बीच की स्थिति से है।

प्र) औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान

उ) भाषा का उच्चारण हमारे वाग्यंत्र से होता है। मानव के वाग्यंत्र में 22 उच्चारण अवयव काम में आते हैं। औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान में उच्चारण और उससे संबद्धित बातों का अध्ययन होता है। ध्वनियों के उच्चारण वाग्यंत्र (Vocal apparatus) से होता है जिसे उच्चारण अवयव (Vocal organ) भी कहते हैं।

प्र) ध्वनियंत्र या वाग्यंत्र किसे कहते हैं?

उ) मनुष्य निरंतर साँस लेता और छोडता रहता है। जिस सॉस को हम बाहर छोडते है, उससे ध्वनि की सृष्टि होती है। फ़ेफडे से निकलकर शवसनालिका से बाहर आनेवाली हवा कंठ और मुँह के विभिन्न अंगों का स्पर्श करते हुए मुहविवर और नासिकाविवर से होकर जब बाहर जाती है, तब ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में फ़ेफडे से लेकर मुँहविवर तक के जो-जो अंग सहायक बनते हैं उन सबका सामूहिक नाम है ध्वनियंत्र। जैसे - फेफड़ा, स्वरयंत्र, स्वर यंत्र मुख आवरण, अलिजिह्वा, नासिका विवर, तालु, जिह्वा, दाँत और ओष्ठ को हम ध्वनियंत्र या वाग्यंत्र कहते हैं।

प्र) उच्चारण अवयवों का वर्गीकरण कितने भागों में किया गया है? स्पष्ट कीजिए।

उ) उच्चारण अवयवों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। (क) चल अवयव, (ख) अचल अवयव।

(क) चल अवयव - इन अवयवों को ऊपर उठाकर या नीचे ले जाकर ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। इन्हीं को करण (articulator) भी कहते हैं। नीचे का ओष्ठ (जबड़े के साथ), जीभ और उसके विभिन्न भाग तथा स्वरतंत्रियाँ इस वर्ग में आती हैं। नीचे के ओष्ठ तथा जीभ मुँह में नीचे के भाग हैंः अतः उनके आधार पर कभी- कभी केवल निचली स्वरतंत्री को ही करण कहते हैं, किंतु वास्तविकता यह है कि दोनों ही स्वरतंत्रियाँ चल होने के कारण करण का कार्य करती हैं, साथ ही ये उच्चारण-स्थान भी हैं।

(ख) अचल अवयव - ऊपर के दाँत, ऊपर का ओष्ठ, तालु के विभिन्न भाग इसके अन्तर्गत आते हैं। ये चल नहीं हैं। इनसे स्थान का बोध होता है। अलिजिह्वा या कौवे की स्थिति कुछ अजीब है। यों तो यह चल अवयव है, किन्तु मुँह में ऊपर है और ऊपर के अवयव अचल हैं; अतः स्थान-संकेतक हैं, इसीजिए इसे भी प्रायः उन्हीं की श्रेणी में रखा जाता है।

प्र) जिह्वा किसे कहते हैं?

उ) मुख-विवर के निचले भाग में जिह्वा है। जिह्वा उच्चारण-अवयवों में सबसे प्रमुख है, इसी कारण इसके पर्याय 'वाणी', 'ज़बान'(अरबी) या Lingua(लैटिन) आदि भाषा के पर्याय बन गये हैं। साधारण अवस्था में जीभ नीचे ढीली पड़ी होती है। बोलने में वायु-अवरोध या विशेष आकृति का गूँज-विवर बनाने के लिए हम इसका प्रयोग करते हैं। जिह्वा को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है - मूल, पश्च, मध्य, अग्र, नीचा।

प्र) ध्वनियों का वर्गीकरण कितने भागों में किया जाता है?

उ) भाषा विज्ञान में हम भाषा की ध्वनियों को दो भागों में बाँट सकते हैं - **स्वर और व्यंजन**। **स्वर :** 'स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वयं उच्चरित होते हैं।', 'स्वर वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख-विवर से निकल जाती है।'

व्यंजन : 'व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वर की सहायता से उच्चरित होते हैं।', 'व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती।

प्र) व्यंजनों का उच्चारण कैसे किया जाता है?

उ) व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती।या तो इसे पूर्ण अवरूद्ध होकर फिर आगे बढ़ना पड़ता है, या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पड़ता है, या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पार्श्वों से निकलना पड़ता है, या किसी भाग को कंपित करते हुए निकलना पड़ता है। इस प्रकार, वायुमार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।'

प्र) जीभ के विभिन्न भागों के आधार पर हिन्दी स्वरों को कितने भागों में बाँटा गया है?

उ) फेफड़े से बाहर आने वाली निःश्वास वायु से मुख-विवर के विभिन्न रूपों के कारण विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। स्वर उच्चरण-प्रक्रिया में जीभ का अग्र, मध्य अथवा पश्च भाग उठकर सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर हिन्दी स्वरों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) अग्र स्वर - इ, ई, ए, ऐ।
(ख) मध्य स्वर - अ।
(ग) पश्च स्वर - उ, ऊ, ओ, औ।

प्र) जीभ का व्यवहृत भाग के उठने के आधार पर हिन्दी स्वरों को कितने भागों में बाँटा गया है?

उ) स्वर उच्चारण प्रक्रिया में जीभ के अल्पाधिक रूप से उठने के कारण मुख के खुलने वाली स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं।

(क) विवृत – जब मुख-विवर पूरा खुला हो, जीभ निश्चेष्ट पडी हो; यथा - आ, ऑ।
(ख) अर्ध –विवृत : जब मुख-विवर लगभग पूरा खुला हो, जीभ एक तिहाई उठी हो; यथा – ए, औ।
(ग) अर्ध -संवृत : जब मुख-विवर संकरा हो, जीभ दो तिहाई उठी या चंचल हो, यथा – ए, ओ।
(घ) संवृतः मुख-विवर अत्यंत संकरा हो, जीभ बहुत ऊपर उठी हो या सर्वाधिक चंचल हो; यथा - इ, ई, उ, ऊ।

प्र) ओठों की स्थिति के अनुसार हिन्दी स्वरों को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

उ) उच्चारण में ओठों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्चारण हेतु निःश्वास का भीतरी नियंत्रण जीभ के द्वारा होता है, तो उनका बाहरी नियंत्रण ओठों के द्वारा होता है। ओठों की स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं-

(क) वृत्ताकार - इसे वृत्तमुखी स्वर भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ अल्पाधिक रूप में वृत्ताकार खुलते हैं। ऐसे स्वर हैं - उ, ऊ, ओ, औ।
(ख) अवृत्ताकार - इसे अवृतमुखी भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ खुलकर वृत्ताकार रूप धारण नहीं करते हैं वरन् सामान्य रहते हैं। ऐसे स्वर हैं- इ, ई, ए, ऐ।
(ग) उदासीन – जिन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ खुलकर लगभग उदासीन रहते हैं; यथा- अ।

प्र) स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर स्वरों को कितने प्रकारों में विभाजित किया गया है?

उ) विभिन्न स्वरों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ भिन्न-भिन्न स्थिति धारण करती हैं। इस आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत कर सकते हैं।

(क) घोष – जिन स्वरों के उच्चरण में स्वर-तंत्रियों के निकट आने के कारण वायु घर्षण के साथ बाहर आती है, उन्हें घोष कहते हैं। प्रायः सभी स्वर घोष होते हैं।

(ख) अघोष – जिनके उच्चरण के समय स्वर-तंत्रियों के एक-दूसरे से दूर होने के कारण वायु बिना घर्षण के, सरलता से बाहर आती है, उन्हें अघोष स्वर कहते हैं; यथा – विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त इ, उ, ए विशिष्ट ध्वनियाँ।

(ग) जपित – जब बीमार या कमजोर व्यक्ति फुसफुस करता है, तो वायु स्वर-तंत्रियों से साधारण संघर्ष करती हुई बाहर आती है। इस प्रकार से उच्चरित स्वर ध्वनियाँ जपित होती हैं।

प्र) मुख की माँसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण।

उ) विभिन्न स्वरों के उच्चरण मं कभी तो मुख माँसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं, तो कभी शिथिल हो जाती हैं। कुछ ध्वनियों के उच्चरण -समय मांसपेशियों में हल्की दृढ़ता होती है। इय आधार पर स्वरों के शिथिल दृढ़ और मध्यम तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं-

(क) शिथिल - अ,इ,उ।
(ख) दृढ़ - औ, ऑ।
(ग) मध्यम – ए, ओ।

प्र) संयुक्तता के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण।

उ) स्वरों के एक स्थान और एक से अधिक स्थानों के उच्चारण को ध्यान में रखकर उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) मूल स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्थान पर रहती है; यथा - अ, आ, इ, ई आदि।

(ख) संयुक्त स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्वर उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है, तो संयुक्त स्वर होते हैं; यथा – ऐ > अए, औ > अओ आदि।

प्र) मान स्वर किसे कहते हैं?

उ) मान स्वर का अर्थ है मानक स्वर या आदर्श स्वर। ये किसी भाषा विशेष के नहीं होते हैं बल्कि विभिन्न भाषाओं के स्वरों के उच्चारण हेतु स्थान निर्धारण के लिए बनाए हुए मानदंड हें। इन स्वरों के प्रतिपादन का श्रेय जानवालिस तथा हेलबैग को है।

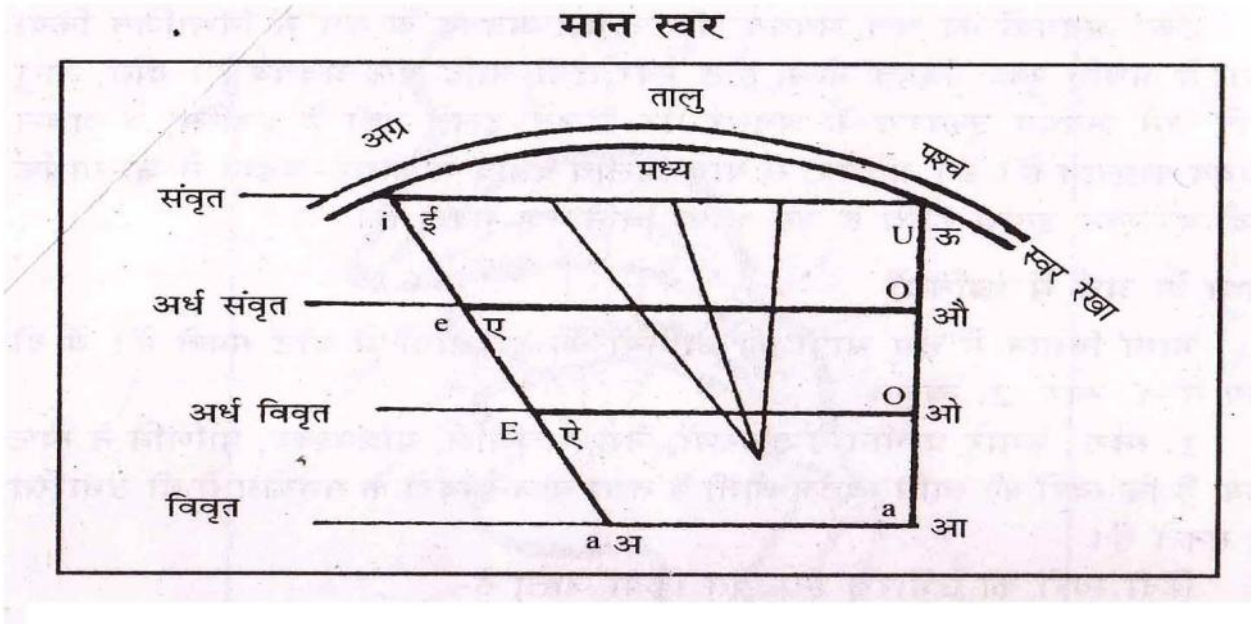

प्र) प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण कैसे हुआ है?

उ) ध्वनियों के उच्चारण के लिए हवा को रोककर या और कई प्रकार से विकृत करना पड़ता है। इसी क्रिया को 'प्रयत्न' कहते हैं। कुछ विद्वान् व्यंजन हेतु प्रयत्नों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत करते हैं। -

1. स्पर्श : उच्चारण हेतु हवा के आगमन, अवरोध व स्फोट के कारण जो व्यंजन उच्चरित होते हैं वे स्पर्श श्रेणी में आते हैं जैसे क्, ट्, त् तथा प् ।
2. संघर्षी : जिनके उच्चारण में उच्चारण अवयव एक-दूसरे से टकराकर उच्चारण करते हैं जैसे ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, श्, ष् आदि।

3. नासिक्य : नासिका के माध्यम से उच्चारित होने वाले व्यंजन जैसे ङ, अं, ञ, ण, म,न आदि।
4. पार्श्विक : मुँह के बीच में वायु रोककर किए जाने वाले उच्चारण जैसे ल आदि।
5. कंपित : जीभ की नोक पर कंपन होता है जैसे र, ऋ, ल् आदि।
6. उत्क्षिप्तः जीभ झटका देकर गिरती है जैसे ड़, ढ़ आदि।

अन्य वर्गीकरण इस प्रकार है-

1. स्पर्श संघर्षी : यह श्रेणी स्पर्श और संघर्षी दोनों के मिश्रित प्रयत्न से होती है। वह प्रायः स्पर्शी व संघर्षी व्यंजन एक साथ आने पर उच्चरित होता है।
2. संघर्षहीन प्रवाह : मुँह की वायु बिना रुके बाहर आती है जैसे इ, उ आदि।
3. मिश्रित : उपरिवर्णित दो प्रकार के व्यंजन संयुक्त रूप से आने पर उच्चारण प्रक्रिया में अंतर आ जाता है।

प्र) व्यंजनों के उच्चारण प्रयत्न को कितने भागों में बाँटा जा सकता है?

उ) जिन व्यंजनों के उच्चारण प्रयत्न से किए जाते हैं इनके उच्चारण प्रयत्न को निम्नलिखित 22 भागों में बाँटा जा सकता है- घोष, अघोष, जपित, अल्प प्राण, महाप्राण, मौखिक ध्वनि, नासिक्य ध्वनि, मौखिक नासिक्य ध्वनि, स्पर्श, संघर्षी, पार्श्विक, लुंठित, उत्क्षिप्त, अर्धस्वर, संवृत, मर्मर, अर्ध संवृत, अर्ध विवृत, विवृत, अंतर्मुखी, क्लिक, उद्गार।

प्र) उच्चारण अवयवों के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है?

उ) व्यंजनों का वर्गीकरण, उच्चारण अवयवों के आधार पर भी किया जाता है, जैसे- स्वर यंत्रीय, उपालिजिह्वीय, अलि जिह्वीय, कोमल तालव्य, कठोर तालव्य, मूर्धन्य, वर्त्स्य, दन्त्य, दन्त्योष्ठ्य, ओष्ठ्य

प्र) मात्रा किसे कहते हैं?

उ) ध्वनि के उच्चारण के पश्चात् मौन तक जितना समय लगता उसे ध्वनि लक्षण के अन्तर्गत मात्रा कहा जाता है। यह मात्रा तीन प्रकार की होती है। पाणिनि ने लघु सिद्धांत कौमुदी में इन तीन मात्राओं का उल्लेख इस प्रकार किया है- ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। ह्रस्व अर्थात् एक मात्रा का समय (अ) , दीर्घ मतलब दो मात्रा का समय (आ), प्लुत से आशय है तीन मात्रा का समया (ऊ)।

प्र) बलाघात किसे कहते हैं?

उ) बलाघात का आशय यह है कि हम उच्चारण के समय किसी अक्षर पर ज्यादा जोर देते हैं, किसी पर नहीं। इसे ही बलाघात कहते हैं। बलाघात उच्चारण शक्ति की वह मात्रा है जिससे किसी भाषिक इकाई का उच्चारण किया जाता है। यह बलाघात संसार की सभी भाषाओं में होता है। बलाघात से अर्थ परिवर्तन भी होते हैं। यह बलाघात कई स्थानों पर हो सकता है जैसे शब्द, वाक्य, अक्षर, ध्वनि, वाक्यांश आदि पर बलाघात होता है। उदाः **रोको मत**, जाने दो। **रोको**, मत जाने दो। बलाघात के स्वरूप को दृष्टिगत कर इसको चार प्रमुख वर्गों में विभक्त कर सकते हैं- (क) ध्वनि बलाघात, (ख) अक्षर बलाघात, (ग) पद बलाघात, (घ) वाक्य बलाघात।

प्र) सुराघात किसे कहते हैं?

उ) सुर के विभिन्न स्वरूप स्वर-तांत्रियों की कंपन - आवृत्ति पर आधारित होते हैं। जिस प्रकार वीणा के ढीले तारों में कंपनावृत्ति कम और खिंचे तारों में कपनावृत्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है, उसी प्रकार स्वर तंत्रियों के ढीले और कसे होने पर क्रमशःसुर की निम्नता और उच्चता होती है। सुराघात को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं - उच्च, निम्न और मध्य सुराघात।

उच्च सुराघात – जब स्वर-तंत्रियों के तनाव-आधार पर सुर उच्चता की ओर गतिशील होता है, तो सुरारोही होता है। ऐसे उच्चारण में स्वर तंत्रियों का तनाव क्रमशः बढ़ता जाता है। आरोही सुर के शीर्ष को उच्च सुराघात कहते हैं। आरोही सुर को (↑)चिह्न से अंकित करते हैं।

निम्न सुराघात – जब स्वर तंत्रियों का तनाव क्रमशः कम हो रहा हो, तो सुर के कम होते रहने के कारण इसे सुरावरोही कहते हैं। इसका निम्नतम रूप निम्न सुराघात है। अवरोही सुर का संकेत चिह्न (↓) हैं।

मध्य सुराघात – जब उच्चारण प्रक्रिया में स्वर तंत्रियों का तनाव लगभग समान बना रहता है, तो मध्म सुराघात होता है। मध्य सुराघात को (→)चिह्नित करते हैं।

उदाः वह पंजाब जा रहा है। →(सामान्य कथन)

वह पंजाब जा रहा है।↓ (प्रश्न वाचक)

वह पंजाब जा रहा है। ↑(विस्मयबोधक)

प्र) सुरलहर अथवा अनुतान किसे कहते हैं?

उ) सुर किसी एक ध्वनि का होता है, किन्तु जब हम एक से अधिक ध्वनियों की कोई इकाई (शब्द, वाक्यांश, वाक्य) का उच्चारण करते है, तो हर ध्वनि (घोष) का सुर प्रायः अलग-अलग होता है और इस प्रकार सुरों के उतार-चढ़ाव की लहर बनती है जिसे 'सुरलहर' अथवा 'अनुतान' कहते हैं।

प्र) अक्षर क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उ) अक्षर 'एक ध्वनि' अथवा 'एकाधिक ध्वनियों' की वह इकाई है जिसका उच्चारण एक झटके से होता है तथा जिसमें एक स्वर अवश्य होता है। उसके पहले या बाद में एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। अक्षर में स्वर शीष (Peak) या केन्द्रक (Nucleus) होता है तथा उसके पहले वाला या वाले व्यंजन को 'पूर्वगहवर' (Onset) तथा बाद वाला या वाले व्यजन को 'परगहवर'(Coda) कहते हैं। अक्षर की अंतिम ध्वनि को ध्यान में रखकर इसके दो भेद किए जा सकते हैं - बद्धाक्षर, मुक्ताक्षर।

उदाहरण के लिए – 'राम'

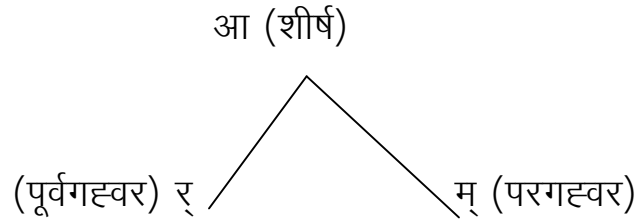

प्र) सांवहनिक अथवा प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान किसे कहते हैं?

भाषाविज्ञान में इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि कैसे ध्वनि लहरों द्वारा वक्ता के मुँह से श्रोता के कान तक ले जायी जाती है। ऐसा होता है कि फेफड़े से चली हवा ध्वनि-यंत्रों की सक्रियता के कारण आन्दोलित होकर निकलती है और बाहर की वायु में अपने आन्दोलन के अनुसार एक विशिष्ट प्रकार के कम्पन्न से लहरें पैदा कर देती है। ये लहरे ही सुनने वाले के कान तक पहुँचती है और वहाँ श्रवणेन्द्रिय में कम्पन पैदा कर देती है। इस शाखा में कम्पन से उत्पन्न लहरों का अध्ययन किया जाता है।

प्र) स्वनिम विज्ञान/ध्वनिग्राम विज्ञान

स्वनिम विज्ञान भाषा विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा है। स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार करते हैं। इसके अंतर्गत स्वनिम (ध्वनिग्राम) **(phoneme)** तथा उपस्वन (संध्वनि) **(allophone)** का निर्धारण, उपस्वन का वितरण, स्वर और व्यंजन स्वनिमों का उस भाषा में प्रयुक्त संयोग एवं अनुक्रम प्राप्त खंड्येतर स्वनिमों (अनुतान, बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता) की व्यवस्था रूपिमों के मिलने पर घटित होने वाले स्वनिमिक परिवर्तन आदि स्वनिमिक व्यवस्था से संबद्ध सारी बातें आती हैं।

प्र) स्वनिम क्या है? उसके भेद कौन-कौन से हैं?

उ) स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इसका पर्यायवाची शब्द फोनीम है। विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न रीतियों से पारिभाषित किया है। ब्लूफील्ड ने **'A minimum unit of distinctive sound feature'** कहकर स्वनिम को व्यवच्छेदक ध्वनि स्वरूप की लघुतम इकाई कहा है। ब्लैक और ट्रिगर ने स्वनिम को ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ऐसी ध्वनियों का समूह बताया है जो किसी भाषा विशेष के उसीप्रकार के अन्य समस्त समूह व्यतिरेकी एवं अन्यापवर्ती होता है। अर्थात् स्वनिम अर्थभेदक ध्वनि है। एडवर्ड सापीर इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं।

स्वनिम उच्चरित भाषा का वह न्यूनतम अंश है जो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट करता है। आसपास के अन्य ध्वनियों के प्रभाव के कारण किसी भाषा की समान गुण और प्रकृतिवाली ध्वनियाँ ही समान रूप से नहीं होतीं। उदाहरण केलिए -

हिन्दी में एक ध्वनि है 'ला'। यदि हम उलटा 'लो', 'ले, तथा 'ला' शब्दों का सावधानी से उच्चारण करे और जीभ की स्थिति में ध्यान दे तो स्पष्ट होगा- 'ला$_1$' जीभ उलट जाती है। 'ला$_2$ (लो) दांत की ओर आगे है। 'ला$_3$ (ले) और आगे, 'ला$_4$ (ला) और भी आगे। ला ध्वनि के इन शब्दों में चार प्रतिनिधि ल$_1$, ल$_2$, ल$_3$, ल$_4$ । ला सामान्य ध्वनि है। इसके वास्तविक रूप में प्रयुक्त रूप चार हैं। 'ला' स्वनिम है तथा बाकी उसके उपस्वन हैं।

स्वनिम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-

1. खंड्य स्वनिम : जिन्हें अलग-अलग खंडित किया जा सके। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। इसके दो भेद है- स्वर स्वनिम, व्यंजन स्वनिम।
2. खंड्येतर स्वनिम : इन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं।
   खंड्य स्वनिम के दो उपभेद हैं तथा खंड्येतर के पाँच उपभेद होते हैं। इन्हें इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

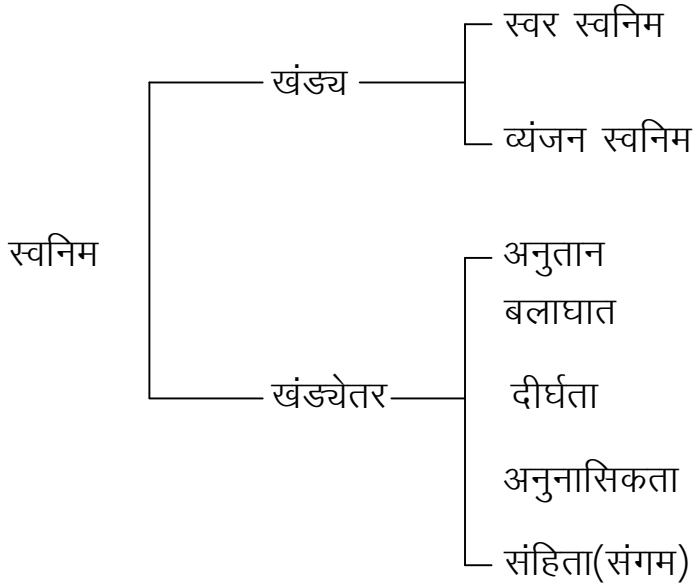

प्र) स्वनिम और उपस्वन के भेद स्पष्ट कीजिए –

	स्वनिम	उपस्वन
1)	जाति के समान	व्यष्टि या व्यक्ति के समान
2)	परिवार	परिवार का एक सदस्य
3)	मानसिक सत्ता	भौतिक सत्ता
4)	अर्थभेदक	अर्थभेदक नहीं
5)	भाषा में महत्वपूर्ण	महत्वपूर्ण नहीं होता है
6)	आपस में व्यतिरेकी या व्यतिरेकी वितरण वाले	आपस में परिपूरक वितरण वाले
7)	अननुमेय	अनुमेय

प्र) वितरण के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) वितरण के तीन भेद होते हैं-

(1) व्यतिरेकी या विरोधी वितरण – कभी कभी समान परिवेशों में दो भिन्न स्वनों को पाते हैं और एक स्वन की भिन्नता के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन देखा जाता है। 'बाप', 'पाप', इन दोनों शब्दों को देखे तो दोनों में 'आप' है और 'आप' के पूर्व 'ब्' और 'प्' का प्रयोग हुआ है और इन दोनों को आपस में बदलते तो शब्द के अर्थ में भिन्नता पैदा होती है। इसलिए समान परिवेश में अर्थ में व्यतिरेक पैदा करने के कारण यह व्यतिरेकी है।

(2) परिपूरक वितरण – कभी कभी एक ही स्वन भिन्न-भिन्न परिवेश में भिन्न प्रकार से उच्चरित होता है। इस भिन्न प्रकार के उच्चारण से शब्द के अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पडता। उदाः किताब (क् + इ + त् + आ + ब्) और कुमार (क् + उ + म् + आ + र्) को लिये तो 'क्' के स्थान बदलने पर अर्थ परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए यह परिपूरक वितरण है।

(3) मुक्त वितरण – जब ध्वनि में अंतर होने पर भी अर्थ परिवर्तन न हो, तो इसे मुक्त या स्वच्छंद वितरण कह सकते हैं। उदाहरण के लिए, बहुत-से हिन्दी शब्दों में बहुत-से लोगों के उच्चारण में क-क़ (कानून – क़ानून) या ग-ग़ (गरीब-ग़रीब) मुक्त वितरण में है। बिना अर्थ बदले कोई भी आ सकता है। इस प्रकार आने वाली ध्वनियाँ (स्वन) मुक्त परिवर्तन (**free variant**) कहलाती हैं।

(4) खंड्य स्वनिम : जिन्हें अलग-अलग खंडित किया जा सके। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है।

(5) खंड्येतर स्वनिम : इन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं।

खंड्य स्वनिम के दो उपभेद होते हैं तथा खंड्येतर के पाँच उपभेद होते हैं। इन्हें इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

प्र) स्वनिम या ध्वनिग्राम के भेदोपभेद कौन-कौन सी है?

उ) स्वनिम के दो भेद है 1) खंडयस्वनिम, 2) खण्ड्येतर स्वनिम।

खंडयस्वनिम के दो भेद है – 1) स्वर स्वनिम, 2) व्यंजनस्वनिम

स्वरस्वनिम : हिन्दी भाषा में दस स्वर हैं - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एं, ऐ, ओ, औ।
व्यंजनस्वनिम : हिन्दी के अधिकांश व्यंजनों के न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं। सबको अलग-अलग देना संभव नही है। कुछ विवादास्पद व्यंजन स्वनिम है नासिक्य व्यंजन। कान-कान्ह 'न-न्ह' अलग-अलग स्वनिम होने का संकेत न्यूनतम युग्मों द्वारा मिया जाता है। शेष में 'म', 'न' माला, नाला, स्पष्ट स्वनिम है। बहुत लोग 'ण' को 'न' कहते। गुण-गुन 'ण, न' को भी एक सीमा तक स्वनिम माना जा सकता है। 'न' स्वनिम है तो उसके उपस्वन हैं- ङ, ञ, न।

स्वनिम	उपस्वन	वितरण
न	ङ	क,ख,ग,घ के पूर्व (अंक, शंख)
	ञ	च,छ,ज,झ, के पूर्व (चंचल, मंजु, वांछा)
	न	अन्यत्र

खण्ड्येतर स्वनिम – भाषा में कुछ तत्व ऐसे भी होते हैं जिन्हें अलग-अलग रूप से खंडीकृत या खंडित नहीं किया जा सकता। यह तत्व किसी स्वर या व्यंजन से लगे रहते हैं और अर्थभेदक भी होते हैं। इन व्यतिरेकी तत्वों को अधिखंडीय या खंड्येतर स्वनिम कहते हैं। मात्रा या दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता या संगम, बल, सुर या अनुतान आदि इसके भेद हैं।
मात्रा या दीर्घता: ध्वनियों की ह्रस्वता या दीर्घता जब अर्थभेदक होता है तब मात्रा नामक स्वनिम की परिकल्पना की जाती है। उदाः आसन-आसन्न, बचा-बच्चा।
अनुनासिकता : या स्वरों की विशेषता है। स्वरों के उच्चारण में थोडी सी हवा नासिका से जब बाहर निकलती है तब अर्थ में अन्तर आ जाता है तो अनुनासिका रूपी अधिखंडीय स्वनिम की परिकल्पना करती है। उदाः सास-साँस, काटा-काँटा।
संहिता या संगमः उच्चारण की विधि जिसमें उच्चारण भेद में अर्थभेद होता है वह संहिता नाम से जाना जाता है। उदाः होली- हो ली, तुम्हारे – तुम हारे।
बलाघातः इसमें किसी ध्वनि पर अधिक व्यय किये जाने पर अर्थभेद होते हैं। उदाः मारो मत छोडो, मारो मत छोडो, मारो मत छोडो।
अनुतानः इसमें सुरों के आरोह-अवरोह के क्रम में अर्थभेद हो सकता है। उदाः राम गया।, राम गया!

प्र) खंड्येतर स्वनिम क्या है?

उ) जिन स्वनिमों को अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता उन्हें खंड्येतर स्वनिम कहते हैं। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं। खंड्येतर के पाँच उपभेद होते हैं। इन्हें इस प्रकार दर्शाया जा सकता है- मात्रा या दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता या संगम, बल, सुर या अनुतान आदि इसके भेद हैं। मात्रा या दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता या संगम, बल, सुर या अनुतान आदि इसके भेद हैं।

प्र) **रूप विज्ञान क्या है?**

उ) रूप को इस प्रकार पारिभाषित कर सकते हैं, "भाषा की लघुतम महत्त्वपूर्ण इकाई जो स्वनिम-समुदाय को सार्थक स्वरूप प्रदान करती है, उसे रूप कहते हैं।" रूप अर्थ प्रकट करने वाली प्रारंभिक इकाई है। स्वनिम के माध्यम से रूप की पहचान होती है क्योंकि रूप स्वनिम पर आधारित होता है। अतः स्वनिम और अर्थ को मिलाने वाली महत्त्वपूर्ण इकाई रूप है; यथा- लता **>** लताएँ, प्रभात **>** प्रभात पर। रूप के द्वारा दो कार्यों का निष्पादन होता है। प्रथम- विभिन्न स्वनिमों को अर्थ संदर्भ में एक साथ प्रयोग का निर्धारण करना और द्वितीय स्वनिम समुदाय के विभिन्न स्वनिमों में संबंध स्थापित करना।

रूप का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है।

(1) रूप का प्रयोग-क्रम आधार - इसमें विभिन्न रूपों को उनके प्रयोग-क्रम को आधार बनाकर वर्गीकरण करते हैं; जैसे - उपसर्ग, मध्यसर्ग और प्रत्यय।

(2) अनुक्रमात्मक वर्गीकरण - इसमें विभिन्न रूपों के वर्गों के अनुक्रम में प्रयोग आधार पर वर्गीकरण करते हैं; जैसे – प्रातिपदिक वर्ग पहले आता है, तो सुप् वर्ग उसके बाद आता है। तिङ्वर्ग ऐसा वर्ग है जो धातु के बाद प्रयुक्त होता है।

(3) संयोगात्मक और वियोगात्मक रूपों को दृष्टिगत कर किया जा सकता है। जैसे- हिन्दी के कुछ क्रियाविशेषण के दोनों प्रकार के रूपों को इस प्रकार व्यवस्थित कर सकते हैं-

संयोगात्म्क रूप – धीमा – धीमे, रोना-रोकर, अंत-अंततः, पूर्ण – पूर्णतया, जबर-जबरन

अयोगात्मक रूप - सुबह का, आज तक, पेड़ पर, जी भर, दिन में।

रूप को प्रायः पद के पर्यायी रूप में ग्रहण किया जाता है, किन्तु दोनों में सूक्ष्म भेद भी है। पद के भीतरी उपादान तत्त्वों के आपसी संबंध का ज्ञान रूप कराता है। संरचनात्मक ज्ञान रूप के माध्यम से होता है। प्रयोग की दृष्टि से पद अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण इकाई है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि रूप, भाषा की संरचनात्म्क आंतरिक व्यवस्था है, तो पद, भाषा की प्रयोगात्मक बाह्य व्यवस्था है। रूप के वैज्ञानिक अध्ययन को रूपविज्ञान कहते हैं।

प्र) पद और शब्द का अंतर स्पष्ट कीजिए।

उ) शब्द और पद दोनों भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं। भाषा-वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार, 'भाषा की लघुतम स्वतंत्र, सार्थक और महत्त्वपूर्ण इकाई शब्द है, तो वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य व्याकरणिक क्षमता युक्त शब्द को पद कहते हैं।' उदाहरण के लिए – 'आम' हिन्दी का एक शब्द है। इसे जब वाक्य में प्रयोग करते हैं, तो पद बन जाता है। जैसे – 'आम मीठा है।' शब्द की अपेक्षा पद भाषा की महत्तर इकाई है।

प्र) वाक्य के कितने तत्त्व हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) वाक्य का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि उसमें दो तत्त्वों का समावेश होता है – 1. संबंध तत्त्व, 2. अर्थ तत्त्व। दोनों में प्रधान अर्थतत्व है। अर्थ तत्त्व का अर्थ है शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति। सम्बन्धतत्त्व का कार्य है विभिन्न अर्थतत्त्वों का आपस में सम्बन्ध दिखलाना। उदाहरणर्थ – 'राम ने रावण को बाण से मारा'। इस वाक्य में चार अर्थतत्त्व हैं- राम, रावण, बाण और मारना। वाक्य बनाने केलिए चारों अर्थतत्त्वों में सम्बन्धतत्त्व की आवश्कता पड़ेगी, अतः यहाँ चार सम्बन्धतत्त्व भी हैं (ने, को, से) ।

प्र) रूपिम अथवा रूपग्राम क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उ) रूपिम को रूपग्राम और पदग्राम भी कहते है। जिस प्रकार स्वन-प्रक्रिया की आधार भूत इकाई स्वनिम है, उसी प्रकार रूप प्रक्रिया की आधारभूत इकाई रूपिम है। रूपिम वाक्य-रचना और अर्थ- अभिव्यक्ति की सहायक इकाई है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार, "भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई को रूपग्राम अथवा रूपिम कहते हैं।" रूप या पद वे अवयव या घटक हैं, जिनसे वाक्य बनता है। उदाः 'उसके रसोईघर में सफाई होगी'। इस वाक्य में पाँच पद या रूप हैं, जिन्हें सामानय भाषा में शब्द कहते हैं। यह रूपों में सभी एक प्रकार के

नहीं हैं। कुछ तो छोटे से छोटे टुकड़े हैं, उन्हें और छोटे खंडों में नहीं विभाजित किया जा सकता जैसे 'में'। कुछ को छोटे खंडों में बाँटा जा सकता है, जैसे रसोईघर को 'रसोई' और 'घर' में। यदि घर को और छोटे टुकड़ों में बाँटना चाहे तो 'घ' और 'र' कर सकते हैं, यद्यपि इनमें न तो 'घ' का कोई अर्थ है और न 'र' का, इसलिए ये दोनों खंड तो हैं, किन्तु सार्थक नहीं हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त वाक्य में उस, के, रसोई, घर, में, साफ, ई, हो, ग, ई ये दस रूपिम हैं।

प्र) रूपिम के कितने भेद है? स्पष्ट कीजिए।

उ) रचना और प्रयोग की दृष्टि से रूपिम प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैंः

(क) मुक्त रूपिम - जो अकेले या अलग भी प्रयोग में आ सकते हैं। (उपर्युक्त वाक्य में रसोई,घर, साफ़ इसी प्रकार के हैं।) ये अलग, मुक्त या स्वतंत्र रूप से भी आ सकते हैं (जैसे रसोई बन चुकी है) और अन्य रूपिमों के साथ भी आ सकते हैं (जैसे रसोईघर)।

(ख) बद्ध रूपिम – जो अलग नहीं आ सकते, (जैसे 'ता' एकता, सुन्दरता या 'ई'घोड़ी, लड़की, खड़ी आदि।)।

प्र) अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैंः **(क)** अर्थदर्शी रूपिम – जिनका स्पष्ट रूप से अर्थ होता है और अर्थ व्यक्त करने के अतिरिक्त जो और कोई कार्य नहीं करते। इन्हीं को अर्थतत्त्व भी कहते हैं। विचारों को सीधा सम्बन्ध इन्हीं से होता है। भाषा के मूल आधार ये ही हैं। व्याकरणिक या प्रायोगिक दृष्टि से ये कई प्रकार के हो सकते हैंः जैसे क्रिया(हो, खा, भू), संज्ञा(राम, किताब), सर्वनाम(वह, तुम), विशेषण(अच्छा, बड़ा, सुन्दर) आदि।

(ख) सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम - इनका प्रमुख कार्य होता है 'सम्बन्ध दर्शन'या 'व्याकरणिक कार्य'। इसलिए इन्हें सम्बन्धतत्त्व भी कहते हैं। ये रूपिम एक शब्द का सम्बन्ध वाक्य में दूसरे से दिखाते हैं, साथ ही ये लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति या अर्थ और भाव आदि की दृष्टि से अथ्रदर्शी रूपिम में परिवर्तन भी लाते हैं। (जैसे 'लड़क्' अर्थदर्शी रूपमग्राम है। इसमें 'ई', 'आ', 'इयाँ', 'इयों', 'ए', 'ओं'आदि सम्बन्धदर्शी रूपिम या सम्बन्धतत्त्वों को जोड़कर लड़की, लड़का, लड़कियाँ, लड़कियों, लड़के, लड़कों आदि संयुक्त रूपिम या रूप या पद बना सकते हैं।

प्र) सम्बन्धदर्शी रूपिम किसे कहते हैं?

उ) सम्बन्धदर्शी रूपिम उन रूपिमों को कहते हैं जिनका प्रमुख कार्य होता है 'सम्बन्ध दर्शन'या 'व्याकरणिक कार्य'। इसलिए इन्हें सम्बन्धतत्त्व भी कहते हैं। ये रूपिम एक शब्द का सम्बन्ध वाक्य में दूसरे से दिखाते हैं, साथ ही ये लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति या अर्थ और भाव आदि की दृष्टि से अथ्रदर्शी रूपिम में परिवर्तन भी लाते हैं। (जैसे 'लड़क्' अर्थदर्शी रूपमग्राम है। इसमें 'ई', 'आ', 'इयाँ', 'इयों', 'ए', 'ओं'आदि सम्बन्धदर्शी रूपिम या सम्बन्धतत्त्वों को जोड़कर लड़की, लड़का, लड़कियाँ, लड़कियों, लड़के, लड़कों आदि संयुक्त रूपिम या रूप या पद बना सकते हैं।

प्र) वाक्यविज्ञान से तत्पर्य क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उ) 'वाक्यविज्ञान' में वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनाने की प्रक्रिया का वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन होता है। वर्णनात्मक वाक्यविज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य-गठन का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी में दो या अधिक भाषाओं का वाक्य-गठन की दृष्टि से किये गये अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है। ऐतिहासिक वाक्यविज्ञान में एक भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य-गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

वाक्य को प्रायः लोक सार्थक शब्दों का समूह मानते हैं, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो। वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनता है। पद जब वाक्य का रूप धारण कर लेते हैं तो वे अपनी सत्ता खो बैठते हैं व वहाँ वाक्य ही विराजमान हो जाता है।

प्राचीन आचार्यें ने इस पर काफी विचार किया है। फलस्वरूप इन विचारों की परिणति यह हुई कि वाक्य की मीमांसा करते हुए चिंतक दो धाराओं में बँट गए और इससे दो विपरीत विचारधारएँ प्रवाहित होने लगीं। ये विचारधाराएँ इस प्रकार हैंः 1. अभिहितान्वयवाद (पदवाद), 2. अन्वितभिधानवाद (वाक्यवाद)।

अभिहितान्वयवाद : इस मत के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य में 'पद' का महत्त्व है। अतः पद की सत्ता होती है, वाक्य की नहीं, क्योंकि पदों को जोड़ने से ही वाक्य बनता है। यदि पद ही नहीं तो वाक्य कैसे बन सकता है। इसलिए पद ही महत्त्पूर्ण है।

अन्वितभिधानवाद : इस विचारधारा के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य तोड़ने से ही पद बनते हैं। अतः वाक्य का ही महत्त्व है। पद तो इसका एक हिस्सा मात्र है। पद की अलग से कोई सत्ता ही नहीं है। इसलिए इस विचारधार के समर्थकों को वाक्यवादी भी कहते हैं।

प्र) वाक्य की विशेषताएँ क्या-क्या है?

उ) वाक्य की विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. वाक्य शब्दों का समूह हैः यद्यपि यह माना जाता है कि वाक्य पदों या शब्दों का समूह होता है, परन्तु नाटक आदि के संवाद या वार्तालाप में केवल एक शब्द का भी वाक्य हो सकता है। उदाहरण- मोहन, तुमने दवाई खा ली? मोहन-हाँ। यहाँ 'हाँ' पूर्ण वाक्य का अर्थ देता है अर्थात् हाँ, मैंने दवाई खा ली है।
2. वाक्य भाषा की प्राकृतिक इकाई हैः भाषा में लघुतम इकाई ध्वनि को माना जा सकता है। ध्वनि से शब्द, शब्द से पद और पदों के समूह से वाक्य बनता है। परन्तु ये सभी कृत्रिम इकाइयाँ हैं। भाषा की प्राकृतिक एवं सहज इकाई वाक्य ही मानी जाती है।
3. व्याकरणिक दृष्टि से पूर्णः वाक्य प्रायः व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण होते हैं। व्याकरण की अपूर्णता से सही अर्थ सम्प्रेषित नहीं होता है, इसलिए उसे वाक्य कहना तर्कसंगत नहीं होता है।
4. वाक्य में क्रिया की अनिवार्यताः वाक्य में क्रिया या सहायक क्रिया अथवा समापिका क्रिया प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनिवार्य होती है। जहाँ एक शब्द में वाक्य की अनुभूति होती है ऐसे वाक्य में भी क्रिया छिपी रहती है। ऐसी छिपी हुई क्रिया की स्थिति को परोक्ष क्रिया के नाम से जाना जाता है1

प्र) भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्य के लिए आवश्यक गुण कौन-कौन सी है?

उ) भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए 5 बातें आवश्यका हैंः सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति।

1. सार्थकता - सार्थकता का आशय यह है कि वाकय के शब्द सार्थक होने चाहिए।
2. योग्यता – योग्यता का आशय यह है कि शब्दों की आपस में संगति बैठे। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता हो। उदाः 'वह पेड़ को पत्थर से सींचता है' वाक्य में शब्द तो सार्थक हैं, किन्तु पत्थर से सींचना नहीं होता, इसलिए

शब्दों की परस्पर योग्यता की कमी है, अतः यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है उलटबाँसी भले हो।

3. आकांक्षा - आकांक्षा का अर्थ है 'इच्छा'। अर्थात् 'जानने की इच्छा', अर्थात् 'अर्थ की अपूर्णाता'। वाक्य में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह पूरा अर्थ दे। उसे सुनकर भाव पूरा करने के लिए कुछ जानने की आकांक्षा न रहे।
4. सन्निधि या आसत्ति - इसका अर्थ है समीपता। वाकय के शब्द समीप होने चाहिए। उपर्युक्त सभी बातों के रहने पर भी, यदि एक शब्द आज कहा जाय, दूसरा कल और तीसरा परसों तो उसे वाक्य नहीं कहा जाएगा।
5. अन्विति - इसका अर्थ है व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अंग्रेज़ी में इसे **concordance** कहते हैं। विभिन्न भाषाओं में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। यह समानरूपता प्रायः वचन, कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है।

प्र) वाक्य के कितने अंग हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) वाक्य के दो अंग होते हैंः

1) उद्देश्य **Subject** - वाक्य का वह अंग अथवा अंश है जिसके बारे में वाक्य के शेषांश में कुछ कहा गया हो। जैसे 'लड़का गया' में 'लड़का'। उद्देश्य में 'केन्द्रीय शब्द' तथा 'उसका विस्तार' आ सकता है। 'लड़का गया' में 'लड़का' केन्द्रीय शब्द है, किन्तु 'राम का लड़का गया' में 'राम का' उसका विस्तार है और उद्देश्य है 'राम का लड़का'।
2) विधेय **Predicate** - वाक्य का वह अंश है जो उद्देश्य के बारे में सूचना दे। इसमें क्रिया और उसका विस्तार होता है। 'लड़का गया' में 'गया', 'लड़का घर गया' में 'घर गया' तथा 'लड़का अभी घर गया है' में 'अभी घर गया है' विधेय है।

प्र) वाक्यों के कितने प्रकार है? स्पष्ट कीजिए।

उ) भाषाविज्ञानियों ने वाक्य के मुख्यतः दो आधारों को मान्यता दी है। 1) आकृतिमूलक, 2) रचनागत

आकृतिमूलक प्रकारों के भी दो भेद हैंः 1. योगात्मक, 2.अयोगात्मक।

1. *योगा*त्मक : वह है जहाँ शब्दों को वाक्य से अलग करना कठिन है, जैसे मैक्सिकन भाषा में एक वाक्य है – 'नीनकक' अर्थात् 'मैं मांस खाता हूँ। इस 'नीनकक' अर्थात् इस वाक्य

को अलग-अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'क –खाना, नकल्ल - मांस, नेवल्ल- मैं'। अतः ऐसे वाक्य को योगात्मक वाक्य की श्रेणी में रखा जाता है।

2. अयोगात्मक : अयोगात्मक वाक्य में, वाक्य से शब्दों को अलग -अलग किया जा सकता है, जैसे 'मैं विद्यालय जाता हूँ'। यहाँ कर्ता, कर्म और क्रिया की संगति है। इसलिए यह वाक्य है। यदि क्रम बदल दें तो भी वह वाक्य अर्थ देगा जैसे 'विद्यालय जाता हूँ मैं'। परन्तु कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जिनका क्रम बदल देने से वे वाक्य अर्थ बदल देते हैं, जैसे – 'राम ने रावण को मारा' 'रावण ने राम को मारा' इस प्रकार कर्ता का स्थान बदलने से अर्थ भी बदल जाता है।

प्र) वाक्य के रचनागत प्रकार को स्पष्ट करें।

उ) वाक्य के रचनागत प्रकार निम्नलिखित हैं- सरल वाक्य, अपवाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य।

1. सरल वाक्य - सरल वाक्य उसे कहा जाता है जिसमें एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है। जैसे 'मोहन गया'। ऐसे सरल वाक्य के भी पाँच भेद होते हैं, जैसेः
   क. अकर्मकीय - सौरभ हँसता है। इसमें कर्म नहीं है। कतौ और क्रिया है।
   ख. एक कर्मकीय - इनमें एक कर्म होता है, जैसे मोहन खाना खाता है। इसमें मोहन 'कर्ता' है, 'खाना' कर्म है तथा 'खाता है' क्रिया है। इस प्रकार इस वाक्य में सिर्फ एक कर्म है – खाना।
   ग. द्विकर्मकीय - इसमें दो कर्म होते हैं - मोहन श्याम को खत लिखता है। इसमें दो कर्म हैं।
   घ. कर्तृ पूरकीय – घर सुंदर है। कर्ता का पूरक वाक्य है।
   ङ . कर्म पूरकीय - मोहन श्याम को मूर्ख बनाता है यह कर्म पूरकीय वाक्य है।
2. उपवाक्य – जब एक ही वाक्य में दूसरा वाक्य मिला हो तो एक मुख वाक्य होता है तथा दूसरा गौण वाक्य होता है। ऐसे दो एक साथ जुड़े वाक्यों को उपवाक्य कहते हैं, जैसे वह व्यक्ति चला गया जो सबसे महान था। इस वाक्य में वह व्यक्ति चला गया – प्रधान उपवाक्य है तथा जो सबसे महान् था – गौण उपवाक्य है। इस प्रकार दो वाक्यों के योग से बना वाक्य उपवाक्य कहलाता है। इस उपवाक्य के भी दो प्रमुख प्रकार होते हैं-

क. प्रधान उपवाक्य (मुख्य उपवाक्य)

ख. आश्रित उपवाक्य (गौण उपवाक्य)

आश्रित उपवाक्य को भी चार भागों में विभाजित किया जाता है। -

1. संज्ञा उपवाक्य : कर्म या पूरक रूप में संज्ञा का काम करने वाले उपवाक्य संज्ञा उपवाक्य कहलाते हैं। जैसे - मैं जानता हूँ कि वह नहीं आ सकता।
2. विशेषण उपवाक्य : संज्ञा की विशेषता बताने वाले उपवाक्य को इस वर्ग में लिया जाता हैं। जैसे - वही छात्र उत्तीर्ण होगा जो परिश्रम करेगा।
3. मिश्र वाक्य : मिश्र वाक्य उसे कहा जाता है जिसमें एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या अधिक उपवाक्य हों। उदाहरण के लिए यह वाक्य देखें -मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह परीक्षा में सफल हो।
4. संयुक्त वाक्य : वाक्य रचना का एक ऐसा रूप भी है जिसमें न तो प्रधान उपवाक्य हो और न ही आश्रित उपवाक्य। जैसे – 'बूँद रेत में गिरी और विलीन हो गई।'

इस प्रकार के वाक्यों के अनेक भेदोपभेद होते हैं। जैसे – 1. निषेधात्मक, 2. विधानात्मक, 3. प्रश्नवाची, 4. विस्मयबोधक, 5. आज्ञासूचक, 6. संदेहसूचक, 7. इच्छासूचक। वाक्यों में कुछ वाकय ऐसे भी होते हैं जिनमें क्रिया का प्रयोग नहीं होता है। ऐसे वाक्यों को क्रियाविहीन वाक्य कहा जाता है, लेकिन जिन वाक्यों में क्रिया होती है वे क्रियायुक्त वाक्य कहलाते हैं।

प्र) सरल वाक्य की विशेषता स्पष्ट कीजिए।

उ) सरल वाक्य उसे कहा जाता है जिसमें एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है। जैसे 'मोहन गया'। ऐसे सरल वाक्य के भी पाँच भेद होते हैं, जैसेः

क. अकर्मकीय - सौरभ हँसता है। इसमें कर्म नहीं है। कर्ता और क्रिया है।

ख. एक कर्मकीय - इनमें एक कर्म होता है, जैसे मोहन खाना खाता है। इसमें मोहन 'कर्ता' है, 'खाना' कर्म है तथा 'खाता है' क्रिया है। इस प्रकार इस वाक्य में सिर्फ एक कर्म है – खाना।

ग. द्विकर्मकीय - इसमें दो कर्म होते हैं - मोहन श्याम को खत लिखता है। इसमें दो कर्म हैं।

घ. कर्तृ पूरकीय – घर सुंदर है। कर्ता का पूरक वाक्य है।

ङ . कर्म पूरकीय - मोहन श्याम को मूर्ख बनाता है। यह कर्म पूरकीय वाक्य है।

प्र) उपवाक्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

उ) जब एक ही वाक्य में दूसरा वाक्य मिला हो तो एक मुख वाक्य होता है तथा दूसरा गौण वाक्य। ऐसे दो एक साथ जुड़े वाक्यों को उपवाक्य कहते हैं, जैसे वह व्यक्ति चला गया जो सबसे महान था। इस वाक्य में वह व्यक्ति चला गया – प्रधान उपवाक्य है तथा जो सबसे महान् था – गौण उपवाक्य है। इस प्रकार दो वाक्यों के योग से बना वाक्य उपवाक्य कहलाता है। इस उपवाक्य के भी दो प्रमुख प्रकार होते हैं-

क. प्रधान उपवाक्य (मुख्य उपवाक्य)
ख. आश्रित उपवाक्य (गौण उपवाक्य)
आश्रित उपवाक्य को भी 3 भागों में विभाजित किया जाता है। - संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य

प्र) अर्थ की परिभाषा दीजिए।

उ) 'किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इंद्रिय (प्रमुखतः कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो प्रतीति होती है वही अर्थ है।' इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द से उत्पन्न प्रतीति ही अर्थ है। जैसे 'केला' कहने पर हमारे मस्तिष्क में केले के फल की तस्वीर बन जाती है यही प्रतीति कहलाती है।

प्र) अर्थ ग्रहण (प्रतीति) के कितने प्रकार हैं? स्पष्ट कीजिए।

उ) अर्थ की प्रतीति दो प्रकार से होती है-

1. आत्म-अनुभव से - अर्थात् स्वयं किसी चीज़ का अनुभव करना। उदाहरण के लिए 'चीनी मीठी होती है' में मीठी के अर्थ की प्रतीति स्वयं चीनी चखने से हो जाती है। पानी,गर्मी, धूप के अर्थ की प्रतीति भी इसी प्रकार हो सकती है।
2. पर-अनुभव से - अनेक क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहाँ हमारी पहुँच नहीं होती, उस क्षेत्र से सम्बद्ध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान पर निर्भर करना पड़ता है। उदाहरण केलिए, हममें से अनेक लोगों ने 'जहर' नहीं देखा होगा, किन्तु दूसरों से ऐसा सुन रखा है कि ज़हर जीव को मार डालने वाला होता है। अतः 'जहर' शब्द के अर्थ की प्रतीति का मूलाधार आत्म-अनुभव न होकर पर-अनुभव है।

प्र) शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समझाइए।

उ) भाषा में शब्द और अर्थ का परस्पर संबन्ध है। अर्थ के बिना शब्द का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। इस प्रकार कह सकते हैं कि अर्थ के बिना भाषा का कोई मूल्य नहीं है। शब्द को यदि शरीर कहें तो अर्थ इसकी आत्मा है। भाषा की लघुतम, स्वतंत्र सार्थक इकाई शब्द है, और इस शब्द के उच्चारण से श्रोता को जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति को अर्थ की संज्ञा दी जाती है। अर्थ भाषा का अभ्यंतर रूप है और शब्द बाह्य रूप।

प्र) अर्थ-परिवर्तन को समझाते हुए उसके परिवर्तनों की दिशाओं या प्रकार को स्पष्ट कीजिए।

उ) प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है, किन्तु यह 'अर्थ' सर्वदा एक नहीं रहता। उसमें परिवर्तन होता रहता है। समय और संदर्भ के अनुसार शब्द का अर्थ परिवर्तित होता रहता है। उदाहरण के लिए, संस्कृत का शब्द 'आकाशवाणी' लें। संस्कृत में इसका अर्थ 'देववाणी' है। अब आकाशवाणी का अर्थ परिवर्तित होकर हिन्दी में 'रेडियो' हो गया है।

अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ (प्रकार)

अर्थ परिवर्तन के प्रकारों को अर्थ परिवर्तन की दिशा भी कहते हैं। अर्थ परिवर्तन की मुख्यतः तीन दिशाएँ होती हैं-

1. अर्थ विस्तार - अर्थ विस्तार का अर्थ है अर्थ का सीमित क्षेत्र से निकल विस्तार पा जाना। अर्थात जब किसी शब्द का अर्थ सीमित अर्थों से विकसित होकर अनेक अर्थ देने लगता है तब उसे अर्थ विस्तार कहा जाता है।

   उदाः- 'सब्ज', 'सब्जी' शब्द का मूल अर्थ सब्ज - हरा, अर्थात् हरे रंग की सब्जी। अब हर रंग की सब्जी के लिए प्रयुक्त होता है जैसे गाजर(लाल), बैंगन(बैंगनी), मूली(सफेद), टमाटर(लाल)।

   'तेल', शब्द सिर्फ तिल के तेल के लिए प्रयुक्त होता था। लेकिन आज सभी प्रकार के खाद्य तेलों, खनिज तेलों, जैव तेलों आदि सभी के लिए प्रयुक्त होता है।

   'अधर', शब्द का अर्थ 'नीचे का होंठ' है। लेकिन आज दोनों होंठों के लिए प्रयुक्त होता है, बीच के लिए भी तथा अंतरिक्ष के मध्य के विशिष्ट स्थान के लिए भी प्रयुक्त होता है।

   अभ्यास', शब्द का अर्थ 'बाण पर अभ्यास(बार-बार फेंकना) आज हर कार्य का अभ्यास होता है। पढ़ाई में, काम में, शिल्प में, गायन, वादन, नृत्य आदि सभी में यह शब्द प्रयुक्त होता है।

'प्रवीण' शब्द का अर्थ 'वीणा बजाने में दक्ष' है। पर अर्थ विस्तार से आज हर क्षेत्र में प्रवीण का प्रयोग होता है, नृत्य, गीत, भाषा, साहित्य, शिल्प, युद्ध सभी में दक्षता को प्रवीणता कहते हैं।

2. अर्थ संकोच : जब कोई शब्द पहले व्यापक अर्थ देता हो व बाद में उसके अर्थ की व्याप्ति सीमित हो जाए तो उसे अर्थ संकोच कहते हैं। उदाहरण के लिएः

'पंकज' शब्द का पहले का अर्थ कीचड़ में उगने वाली समस्त वनस्पति जैसे शैवाल, काई, सुआ व अन्य प्रकार की कई पौध प्रजातियाँ, कमल, भिस आदि। आज केलव 'कमल' के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अर्थ संकुचित होकर केवल एक ही अर्थ देता है।

'मंदिर' का पहले का अर्थ था - घर, भवन, आवास, महल आदि। अब केवल हिन्दु देवताओं की पूजा का स्थान का अर्थ देता है।

'कृष्ण' का पहले का अर्थ काला, श्यामल, गाढ़े हरे रंग की वस्तु, काले रंग का बोधक। अर्थ संकोच के कारण आज सिर्फ एक ही अर्थ देता है 'भगवान् कृष्ण'।

3. अर्थादेश : जब शब्द अपने मूल अर्थ को त्यागकर दूसरा ही अर्थ देने लगें तब उसे अर्थादेश कहा जाता है जैसे तटस्थ 'नदी किनार' अर्थात् नदी के तट पर रहने वाला'। पहले साधु संन्यासी नदी तट पर रहते थे वे सबसे समान व्यवहार करते थे। अतः उनकी इस प्रवृत्ति के कारण निष्पक्ष व्यक्ति को तटस्थ कहा जाने लगा। यहाँ तटस्थ का अर्थ कुछ और था और अब अर्थ कुछ और हो गया है। इसी प्रकार साहस का अर्थ होता था, दुस्साहस, दुष्कर्म, हत्या, लूटपाट, व्यभिचार आदि। लेकिन आज इसका अर्थ बड़ा सकारत्मक व अच्छे अर्थों में बदल गया है। असे अर्थादेश कहते हैं।

अर्थादेश दो प्रकार से होता है। अर्थों का ऊँचे से नीचे गिरना इसे अर्थापकर्ष कहते हैं जैसे 'नग्न-लुंचित' शब्द का अर्थ था दिगम्बर जैन धर्म के परम आदरणीय संत या मुनि गण। लेकिन इतने ऊँचे आदरणीय स्थान से गिरकर इस शब्द का अर्थ हो गया है – नंगा और लुच्चा।

दूसरा प्रकार है अर्थोत्कर्ष। अर्थात् निम्न प्रकार का अर्थ देनेवाले शब्द उच्च अर्थ देने लगें जैसे 'गोष्ठी' शब्द को ही लें। गोष्ठी या गोठ पालतू जानवरों गाय-बैल, भैंस या बकरी आदि के रहने के स्थान को कहा जाता है, लेकिन आज विद्वानों के सामूहिक विचार मंथन की क्रिया को गोष्ठी कहा जाने लगा है। अर्थात् जानवरों के बाड़े का स्थान ऊँचा होकर विद्वानों का सभास्थल बन गया है। यह है अर्थ मे उत्कर्ष।

प्र) अर्थ विस्तार से क्या तात्पर्य है?

उ) अर्थ विस्तार का अर्थ है अर्थ का सीमित क्षेत्र से निकल कर विस्तार पा जाना। अर्थात जब किसी शब्द का अर्थ सीमित अर्थों से विकसित होकर अनेक अर्थ देने लगता है तब उसे अर्थ विस्तार कहा जाता है।

उदाः- 'सब्ज', 'सब्जी' शब्द का मूल अर्थ सब्ज - हरा, अर्थात् हरे रंग की सब्जी। अब हर रंग की सब्जी के लिए प्रयुक्त होता है जैसे गाजर(लाल), बैंगन(बैंगनी), मूली(सफेद), टमाटर(लाल)।

'तेल', शब्द सिर्फ तिल के तेल के लिए प्रयुक्त होता था। लेकिन आज सभी प्रकार के खाद्य तेलों, खनिज तेलों, जैव तेलों आदि सभी के लिए प्रयुक्त होता है।

प्र) अर्थ संकोच से क्या तात्पर्य है?

उ) जब कोई शब्द पहले व्यापक अर्थ देता हो व बाद में उसके अर्थ की व्याप्ति सीमित हो जाए तो उसे अर्थ संकोच कहते हैं। उदाहरण के लिएः 'पंकज' शब्द का पहले का अर्थ कीचड़ में उगने वाली समस्त वनस्पति जैसे शैवाल, काई, सुआ व अन्य प्रकार की कई पौध प्रजातियाँ, कमल आदि। आज केलव 'कमल' के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अर्थ संकुचित होकर केवल एक ही अर्थ देता है।'मंदिर' का पहले का अर्थ था - घर, भवन, आवास, महल आदि। अब केवल हिन्दु देवताओं की पूजा के स्थान का अर्थ देता है।

प्र) अर्थादेश किसे कहते हैं? उसके प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

उ) जब शब्द अपने मूल अर्थ को त्यागकर दूसरा ही अर्थ देने लगें तब उसे अर्थादेश कहा जाता है जैसे तटस्थ 'नदी किनार अर्थात् नदी के तट पर रहने वाला'। पहले साधु संन्यासी नदी तट पर रहते थे वे सबसे समान व्यवहार करते थे। अतः उनकी इस प्रवृत्ति के कारण निष्पक्ष व्यक्ति को तटस्थ कहा जाने लगा। यहाँ तटस्थ का अर्थ कुछ और था और अब अर्थ कुछ और हो गया है। इसी प्रकार साहस का अर्थ होता था, दुस्साहस, दुष्कर्म, हत्या, लूटपाट, व्यभिचार आदि। लेकिन आज इसका अर्थ बड़ा सकारत्मक व अच्छे अर्थों में बदल गया है। असे अर्थादेश कहते हैं।

अर्थादेश दो प्रकार से होता है। अर्थों का ऊँचे से नीचे गिरना इसे अर्थापकर्ष कहते हैं जैसे 'नग्न-लुंचित' शब्द का अर्थ था दिगम्बर जैन धर्म के परम आदरणीय संत या मुनि गण। लेकिन इतने ऊँचे आदरणीय स्थान से गिरकर इस शब्द का अर्थ हो गया है – नंगा और लुच्चा।

दूसरा प्रकार है अर्थोत्कर्ष। अर्थात् निम्न प्रकार का अर्थ देनेवाले शब्द उच्च अर्थ देने लगें जैसे 'गोष्ठी' शब्द को ही लें। गोष्ठी या गोठ पालतू जानवरों गाय-बैल, भैंस या बकरी आदि के रहने के स्थान को कहा जाता है, लेकिन आज विद्वानों के सामूहिक विचार मंथन की क्रिया को गोष्ठी कहा जाने लगा है। अर्थात् जानवरों के बाड़े का स्थान ऊँचा होकर विद्वानों का सभा स्थल बन गया है। यह है अर्थ मे उत्कर्ष।

Essay questions 4 weightage

प्र) भाषा विज्ञान की परिभाषा देते हुए, भाषावैज्ञानिक अध्ययन के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालिए।

उ) भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं। भाषा का सर्वांगीण और वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषा विज्ञान का विषय है। दूसरे शब्दों में 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।'

1. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा-विशिष्ट, कई और सामान्य-का एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक व्यतिरेकी तथा अनुप्रयुक्त आदि दृष्टियों से अध्ययन तथा तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण होता है।'
2. डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल के शब्दों में – 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा की उत्पत्ति और विकास से लेकर भाषा का सर्वागीण अध्ययन, विवेचन तथा विश्लेषण किया जाता है तथा तार्किक निष्कर्ष निकाल जाते हैं।'

भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा का अध्ययन मुख्यतः पाँच रूपों में होता हैः

1) एककालिक (Synchronic) : एककालिक अध्ययन में भाषा के किसी एक काल के अध्ययन-विश्लेषण पर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा के एककालिक अध्ययन में हम आज प्रयुक्त हो रही हिन्दी का अध्ययन-विश्लेषण करेंगे। किसी भाषा का एककालिक अध्ययन प्रायः वर्णनात्क भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें किसी भाषा की किसी एक काल का वर्णन करते हैं। यह वर्णन संरचनात्मक या रूपांतरक प्रजनक आदि मॉडलों पर किया जाता है। भाषा अध्ययन के इस रूप से संबंधित भाषा विज्ञान एककालिक या वर्णनात्मक भाषा विज्ञान कहलाता है।
2) ऐतिहासिक (Historical/Dichronic) : इसमें भाषा के इतिहास या विकास का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक अध्ययन को कालक्रमिक भी कहते हैं। यह अध्ययन मूलतः अलग न होकर किसी भाषा के कई कालों के एककालिक या बहुकालिक अध्ययन की ही सुव्यवस्थित श्रृंखला होती है, जिससे उसका विकास स्पष्ट हो जाता है। अध्ययन के इस रूप से संबद्ध भाषा विज्ञान को ऐतिहासिक भाषा विज्ञान कहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा, व्याकरण, पद, प्रयोग आदि का ऐतिहासिक अध्ययन।

3) तुलनात्मक भाषाविज्ञान(Comparative) – तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं-19वीं सदी में शुरू हुआ जिसमें दो या अधिक भाषाओं की तुलना करके ध्वनि, शब्द तथा व्याकरण की समानताओं का पता लगाते थे तथा उनके आधार पर दो या अधिक भाषाओं को एक स्रोत से विकसित होने का निर्णय करते थे। तुलना मूलतः दो प्रकार की हो सकती हैः एककालिक रूप की तथा इतिहास की। एककालिक तुलना में सम्बद्ध भाषाओं के किसी एक काल पर हमारा ध्यान कैन्द्रित रहता है, तो ऐतिहासिक तुलना में संबद्ध भाषाओं के कई कालों के इतिहास या विकास की तुलना होती है। इस अध्ययन से संबंधित भाषा विज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान कहलाता है। भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार इस तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही थीं।

4) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (Contrastive) - बीसवीं सदी के दूसरे चरण के अंत में इन अंतरों की उपयोगिता का पता भाषाशिक्षण और अनुवाद के प्रसंग में चला और भाषाओं में अंतर मालूम करने के लिए 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' नाम से भाषाविज्ञान का एक अलग प्रकार ही मान लिया गया। 'व्यतिरेकी' का अर्थ है 'विरोध'। एक भाषाभाषी जब दूसरी भाषा सीखता है तो दोनों भाषाओं की समानताएँ भाषा सीखने वाले के लिए समस्या या कठिनाई नहीं उत्पन्न करतीं, दोनों में अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर वे अंतर मालूम कर लिए जाते हैं और फिर उन पर बल देकर भाषा सिखाने में सुविधा होती है। ऐसे ही अनुवाद में भी दो भाषाओं के अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं, समानताएँ नहीं। इस प्रकार भाषाशिक्षण और अनुवाद के लिए व्यतिरेकी भाषाविज्ञान बहुत उपयोगी है।

5) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied) - सैद्धांतिक भाषाविज्ञान से प्राप्त संकल्पनाओं तथा तथ्यों का अन्य क्षेत्रों जैसे भाषा सिखाने, कोश बनाने, अनुवाद करने, किसी रचना का शैलीय विश्लेषण करने तथा किसी व्यक्ति का उच्चारण-दोष ठीक करने आदि) में व्यावहारिक प्रयोग 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' कहा जाता है। इसके अंतर्गत मुख्यतः भाषाशिक्षण, कोशकला, अनुवाद, शैलीय विश्लेषण तथा वाग्दोष सुधार आदि आते हैं।

6) भाषाविज्ञान के कुछ प्रकार ऐसे भी हैं जो अन्य विषयों से भाषाविज्ञान के जुड़ने के कारण, या अन्य विषयों का भी भाषा से सरोकार होने के कारण विकसित हुए हैं। जैसे- समाजभाषाविज्ञान (समाजशास्त्र), मनोभाषाविज्ञान (मनोविज्ञान), शैलीविज्ञान (साहित्य) तथा नृजाति-भाषाविज्ञान (एथनोलिंग्विस्टिक्स, नृजातिविज्ञान) आदि।

प्र) भाषाविज्ञान की परिभाषा देते हुए भाषाविज्ञान की शाखाओं का विस्तार से परिचय दीजिए।

उ) भाषा विज्ञान का सम्बन्ध भाषा के अध्ययन से है, अतः इसमें भाषा से सम्बद्ध सभी बातों पर विचार किया जाता है। विद्वानों ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है-

1. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा-विशिष्ट, कई और सामान्य-का एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक व्यतिरेकी तथा अनुप्रयुक्त आदि दृष्टियों से अध्ययन तथा तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण होता है।'
2. डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल के शब्दों में – 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा की उत्पत्ति और विकास से लेकर भाषा का सर्वांगीण अध्ययन, विवेचन तथा विश्लेषण किया जाता है तथा तार्किक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।'

भाषाविज्ञान में भाषा से सम्बद्धित सभी विषय आते हैं। भाषा के विभिन्न अंग या उसकी इकाइयाँ वाक्य, पद, शब्द, ध्वनि तथा अर्थ हैं। इन अंगों या इकाइयाँ को वैज्ञानिक अध्यन को 'भाषा के अध्ययन के विभाग' भी कहा जा सकता है। भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ इस प्रकार हैं-

1) वाक्यविज्ञान - वाक्य, भाषा की मूलभूत सहज इकाई है,क्योंकि भाषा का प्रयोग अभिव्यक्ति या अर्थ-प्रेषण के लिए होता है और अभिव्यक्ति या अर्थ-प्रेषण वाक्य के आधार पर ही संभव है। वाक्य विज्ञान में भाषा की इस मूलभूत इकाई का अध्ययन किया जाता है, जिसमें वाक्य की परिभाषा, किसी विशिष्ट भाषा में या सामान्य रूप से भाषाओं में वाक्यगठन के अन्वय,पदक्रम, पदलोप, पदबंध-रचना, फ्रेज-रचना तथा उपवाक्य-रचना आदि विषयक नियमों, वाक्यों की रचना तथा अर्थ के आधार पर वर्गीकरकण, वाक्य-रचना में परिवर्तन की दिशाओं आदि का अध्ययन होता है। वाक्य के अध्ययन-विश्लेषण द्वारा प्रायोगिक भाषा विज्ञान के लिए विशेषतः अनुवाद तथा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में बड़े उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वाक्य का अध्ययन एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और व्यतिरेकी इन चारों प्रकारों का हो सकता है।

2) रूपविज्ञान – किसी भाषा के वाक्यों के खंडित करने पर हमें जो इकाई मिलती है उसे 'पद' या 'रूप' कहते हैं। उदाहरण के लिए 'मैंने उसे मारा' में 'मैंने', 'उसे'

तथा 'मारा' ये तीन रूप हैं। रूप विज्ञान में पद या रूप का अध्ययन करते हैं। शब्दों या धतुओं के आधार पर रूपरचना कैसे होती है (जैसे पढ् से पढ़ा, पढ़ेगा, पढ़ता, पढ़ो आदि; तू से तुम, तुझे, तुम्हें आदि) रूप बनाने के लिए शब्द या धातु में किस-किस प्रकार के तत्त्व जोड़ने पड़ते हैं (जैसे उस्+ए= उसे; पढ़+आ= पढ़ा आदि), रूपों के द्वारा क्या-क्या काम (काल-द्योतन, लिंग-द्योतन, वचन-द्योतन आदि) लिए जाते हैं, भाषा की रूपरचना में परिवर्तन किन-किन कारणों से तथा किन-किन दिशाओं में होते हैं आदि कुछ वे मुख्य बातें हैं, जिनका रूप विज्ञान के अंतर्गत विचार किया जाता है। रूपों का अध्ययन भी एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और व्यतिरेकी इन चारों प्रकार का हो सकता है।

3) शब्दविज्ञान – पद को खंडित करने पर में दो तत्त्व मिलते हैं- 'शब्द' तथा 'संबंधतत्त्व'। 'शब्दविज्ञान' शब्द का वैज्ञानिक अध्ययन है। शब्द विज्ञान में शब्द की परिभाषा, किसी भाषा के शब्द-समूह में विभिन्न तत्त्व (जैसे तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि) किसी भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन के कारण तथा एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी इन चारों प्रकार का हो सकता है।

4) ध्वनिविज्ञान – ध्वनिविज्ञान में ध्वनियों (स्वनों) का अध्ययन करते हैं। इसमें ध्वनि की परिभाषा, उच्चारण-अवयव, ध्वनियों का उच्चारण, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि परिवर्तन के कारण, परिवर्तन की दिशाएँ, बलाघात, सुरलहर आदि का विचार किया जाता है। ध्वनि के अध्ययन के दो रूप हैं। एक तो मात्र सैद्धांतिक है जिसमें 'जिन उच्चारण-अवयवों से ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है', उनके बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। साथ ही 'स्वर तथा व्यंजन में अंतर', स्वर-व्यंजन का वर्गीकरण, 'अक्षर', 'बलाघात', तथा 'अनुतान' आदि पर विचार करते हैं। ध्वनिविज्ञान का दूसरा रूप भाषा-सापेक्ष होता है जिसमें भाषा – विशेष की ध्वनियों पर विचार करते हैं। इसमें 'भाषा-विशेष की ध्वनियों का वर्गीकरण', 'उस भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों की व्यवस्था', उसमें 'बलाघात' 'अनुतान' 'संधि संहिता' आदि का विवेचन आता है। अंग्रेजी में प्रथम को 'फोनेटिक्स' तथा दूसरे को 'फोनॉलोजी' कहते हैं। हिन्दी में 'फोनेटिक्स' को स्वनविज्ञान तथा 'फोनॉलोजी' को स्वनप्रक्रिया कहते हैं। वक्ता ध्वनियाँ उच्चारित करता है, फिर वायु के द्वारा वे ले जाई जाती हैं और फिर श्रोता उन्हें सुनता है। इन्हीं तीन प्रक्रियाओं के आधार पर ध्वनि विज्ञान की औच्चारणिक

ध्वनि विज्ञान, सांवहनिक ध्वनि विज्ञान तथा श्रावणिक ध्वनि विज्ञान तीन उपशाखाएँ होती हैं जिनमें क्रमशः ध्वनियों के उच्चारण, ध्वनियों की लहरें और उनका संवहन तथा श्रवण-प्रक्रिया पर विचार किया जाता है।

5) अर्थविज्ञान - भाषा के अर्थ-पक्ष का अध्ययन अर्थविज्ञान का विषय है। इसमें 'अर्थ क्या है', 'अर्थ का निर्धारण कैसे होता है', 'वह कितने प्रकार का होता है', 'अर्थ में परिवर्तन के कारण और उनकी दिशाएँ', 'समानार्थता', 'विलोमार्थता' तथा 'बहुअर्थता' आदि का अध्ययन करते हैं। अर्थविज्ञान में अर्थ का अध्ययन एककालिक भी हो सकता है, कालक्रमिक भी, तुलनात्मक भी और व्यतिरेकी भी। साथ ही इसके तहत शब्द उपसर्ग, प्रत्यय, शब्दबंध, पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरे, लोकोक्तियों आदि सभी के अर्थ का अध्ययन किया जाता है।

भाषा विज्ञान की उपर्युक्त पाँच प्रमुख शाखाओं के अलावा लिपिविज्ञान, भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण, भाषा-भूगोल, भाषाकालक्रम विज्ञान, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज, शैलीविज्ञान, सर्वेक्षण-पद्धति, भूभाषाविज्ञान आदि भाषाविज्ञान की अन्य शाखाएँ या अन्य विभाग मुख्य तो नहीं हैं, किंतु ये गौण होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं।

प्र) ध्वनिविज्ञान को स्पष्ट करते हुए, ध्वनि-वर्गीकरण का विस्तार से चर्चा करें।

उ) ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय लगाने से बनता है। ध्वन् का अर्थ है - शब्द करना या आवाज करना। आधुनिक भाषाविज्ञान में ध्वनि के लिए 'स्वन' शब्द का भी प्रचलन हो गया है। "भाषा की न्यूनतम इकाई ध्वनि है।" भाषा में ध्वन्यात्मक अध्ययन ही ध्वनिविज्ञान है। भाषा के विभिन्न अंगों के अध्ययन में ध्वनिविज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ध्वनिविज्ञान के लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वविज्ञान, स्वनिमी आदि नाम दिए जाते हैं। अंग्रेजी में इसके लिए Phonetics और Phonology शब्द प्रचलित है।

मनुष्य वाग्यंत्रों के द्वारा विविध ध्वनियों का उत्पादन पूरी सफलता से करता है। ध्वनि उत्पादन की श्रेष्ठता वाग्यंत्रों की अनुकूलता के साथ अभ्यास पर निर्भर होती है। जिस प्रकार श्रेष्ठ वाद्य कलाकार या संगीतकार वाद्य यंत्रों से विभिन्न ध्वनियों की आकर्षक और मनोहारी प्रस्तुति करता है, उसी प्रकार गीतकार ध्वनियों में भंगिमा भरकर मनमोहक रूप प्रदान करता है।

भावाभिव्यक्ति में अनेक ध्वनियों की भूमिका होती है। ध्वनियों की विविधता को देखकर उन्हें व्यवस्थित करने के लिए वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकरण के निम्नलिखित प्रमुख तीन आधार हैं- स्थान आधार, प्रयत्न आधार, करण आधार।

1) स्थान आधार – ध्वनि-उत्पादन में अनेक स्थानों की भूमिका होती है। सामान्यतः ध्वनि-उत्पादक अचल अंग को स्थान कहते हैं। ध्वनि-उत्पत्ति के संदर्भ में निःश्वास की वायु जहाँ पर बाधित या विकृत हो जाए, उसे स्थान की संज्ञा देते हैं। फेफड़े से चली हुई वायु स्वर-यंत्र से लेकर ओष्ठ तक विभिन्न स्थानों को पार करती है। श्वास लेते समय वायू को इसके विपरीत ओष्ठ से स्वर यंत्र तक के विभिन्न स्थानों से गुजरना होता है। ध्वनि-उत्पादन में निःश्वास की वायु निम्नलिखित स्थानों पर बाधित होकर उच्चारण में सहयोग कर सकती है-

   स्वर यंत्र मुख - इसे काकल भी कहते हैं। यह स्वर-यंत्र का ऊपरी भाग है, जो दो झिल्लियों से निर्मित होता है। स्वर यंत्र मुख खुला रहने पर निःश्वास की वायु तेजी से बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को स्वरयंत्र मुखी या काकल ध्वनि कहते हैं।

   कंठ - इसे कंठ मार्ग भी कहते हैं। जब निःश्वास की वायु कंठ तक आकर कुछ पल के लिए बाधित हो और जिह्वा पश्च कोमल तालु कें स्पर्श करने के पश्चात वायु बाहर निकले, तो कंठ्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

   तालु - मुख-विवर के ऊपर के भाग को तालु कहते हैं। जब निःश्वास की वायु तालु तक आकर अवरुद्ध हो और जिह्वा अग्र द्वारा कठोर तालु के स्पर्श के बाद वायु बाहर निकले तो तालव्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

   मूर्द्धा – तालु का सर्वोच्च स्थान मूर्द्धा होता है। जब निःश्वास की वायु मूर्द्धा तक आकर अवरुद्ध हो ओर जिह्वा मध्य के मूर्द्धा को स्पर्श करने के बाद वायु बाहर आए, तो मूर्द्धन्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

   वर्त्स – दंत पंक्तियों के उपरि भाग को वर्त्स की संज्ञा की जाती है। जब निःश्वास की वायु वर्त्स तक पहुँचकर कुछ क्षण के लिए अवरुद्ध हो और जिह्वा नोक द्वारा वत्सर्य के स्पर्श के पश्चात वायु बाहर जाए तो वर्त्स ध्वनि का उत्पादन होता है।

   दंत – निःश्वास की वायु जब दाँत तक पहुँचकर बाधित हो, जिह्वा नोक ऊपर की दंत पंक्ति को स्पर्श करे और फिर वायु मुख से बाहर जाए, तो दंत्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

ओष्ठ - मुख का बाह्य अंग ओष्ठ ध्वनि उत्पत्ति में विशेष सहयोगी होता है। ओष्ठ की दोहरी भूमिका होती है। कभी तो ओष्ठ दाँत का स्पर्श कर ध्वनि उत्पादन में सहयोगी होते हैं, तो कभी दोनों ओष्ठ आपस में छूकर ध्वनि उत्पादक की भूमिका में सामने आते हैं। इस प्रकार ध्वनियों को दो वर्गों में विभक्त करते हैं-

(क) द्वयोष्ठ्य - जब दोनों ओष्ठ एक-दूसरे को स्पर्श करें, निःश्वास की वायु ओष्ठ तक पहुँचकर क्षण भर अवरुद्ध होकर बाहर आए, तो द्वयोष्ठ्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

(ख) दंत्योष्ठ्य - जब निःश्वास की वायु ओष्ठ तक पहुँचकर क्षण भर अवरुद्ध और नीचे का ओष्ठ ऊपर की दंत-पंक्ति को स्पर्श करे तो दंत्योष्ठ्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

(2) प्रयत्न-आधान : ध्वनि-उत्पादन में फेफड़े से चली हुई निःश्वास की वायु विभिन्न स्थानों पर अवरुद्ध होती रहती है। वायु के अवरोध, रुकावट या विकार में जो प्रक्रिया सहयोगी होती है उसे प्रयत्न कहते हैं। प्रयत्न को दो भागों में विभक्त करते हैं - आभ्यंतर, बाह्य।

(क) आभ्यंतर प्रयत्न – ध्वनि उत्पादन में जो प्रयत्न मुख-विवर के अंतर्गत किये जाते हैं, उन्हें आभ्यंतर प्रयत्न कहते हैं। ओष्ठ से कंठ तक के भाग को मुख-विवर कहते हैं। आभ्यंतर के अंतर्गत चार प्रकार के प्रयत्नों से ध्वनि-उत्पत्ति होती है –

1. स्पृष्ट - स्पृष्ट का शाब्दिक अर्थ है - स्पर्श। हिंदी की कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग की पचीस ध्वनियाँ इस वर्ग में आती हैं, क्योंकि इनके उच्चारण में कोई न कोई भाग एक-दूसरे से स्पर्श करता है।
2. ईषत्स्पृष्ट - इसका शाब्दिक अर्थ है- थोड़ा स्पर्श। कुछ ध्वनियों के उच्चारण में दो अंगों का पूरा स्पर्श न होकर थोड़ा-सा स्पर्श होता है। हिन्दी के अर्द्ध स्वर 'य','व' के उच्चारण में ऐसा ही प्रयत्न होता है। इसलिए अर्द्ध-स्वर या अंतस्थ को ईषत्स्पृष्ट ध्वनि कहते हैं।
3. विवृत – विवृत का अर्थ है – खुला हुआ। जिन ध्वनियों के उच्चारण में ऐसा प्रयत्न हो कि मुख-विवर की पूरी तरह से खुला रहे, उन्हें विवृत ध्वनि कहते हैं। इसमें किसी अंग का किसी से स्पर्श नहीं होता है। वायु अबाधगति से बाहर आती है।
4. संवृत - इसका अर्थ है - बंद हुआ। यह विवृत का ठीक विपरीत प्रयत्न है। जब मुख-विवर अपेक्षाकृत बहुत कम खुला हो, तो संवृत ध्वनियों का उत्पादन होता है। इ, उ आदि ध्वनियाँ ऐसे प्रयत्न से ही उत्पन्न होने के आधार पर संवृत हैं।

(ख) बाह्य प्रयत्न – ध्वनि उत्पादन में जब प्रयत्न मुख-विवर के बाहर अर्थात् पूर्व-अलिजिह्वा के मध्य से होता है, तो उसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं। मुख-विवर को आधार बनाने के कारण है। इसे बाह्य प्रयत्न नाम दिया गया है। बाह्य प्रयत्न को ग्यारह भागों में विभक्त कर अध्ययन कर सकते हैं-

1. विवार – विवार का शाब्दिक अर्थ है – खुला हुआ। जब स्वर यंत्र की स्वर-तंत्रियाँ पूर्णरूपेण खुली होती हैं, तो विवार प्रयत्न होता है।
2. संवार - संवार का अर्थ है -बंद होना। जब स्वर-यंत्र की स्वर-तंत्रियाँ लगभग बंद हों अर्थात् बहुत कम खुली हों, तो संवार प्रयत्न होता है।
3. श्वास – जब स्वर-तंत्रियाँ पर्याप्त रूप में खुली होती हैं और श्वास –निःश्वास की वायु का निरंतर आवागमन होता रहता है, तब श्वास प्रयत्न मानते हैं।
4. नाद- जब स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट हों और निकलती वायु के कारण उसमें कंपन हो तो नाद-प्रयत्न है।
5. अघोष – यह श्वास की स्थिति है। ध्वनि-उत्पादन के समय जब स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे से दूर होती हैं और वायु बिना घर्षण के बाहर निकलती है तो अघोष ध्वनियों का उत्पादन होता है; यथा-प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो व्यंजन ध्वनियाँ- क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् अघोष हैं।
6. घोष – नाद की स्थिति ही घोष्ज्ञ या सघोष है। ऐसी ध्वनियों के उत्पादन में स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट होने से उनमें कंपन होता है; यथा – प्रत्येक वर्ग की अंतिम तीन ध्वनियाँ – ग्, घ्, ज्ञ्, ङ्, ज्,झ्, ञ्, ट्, ड्, ण्, त्, द्, न्, प्, ब्, म् घोष हैं।
7. अल्पप्राण – प्राण का अर्थ है - वायु और अल्प का अर्थ है- थोड़ा। ध्वनि उत्पादन में जब अपेक्षाकृत थोड़ी वायु का प्रयोग होता है, तो अल्पप्राण ध्वनियाँ होती हैं; यथा-प्रत्येक वर्ग की प्रथम तृतीय और पंचम ध्वनियाँ क्, ग्, ङ्, च्, ज्, ञ्, ट्, ड्, ण्, त्, द्, न्, प्, ब्, म् अल्पप्राण हैं।
8. महाप्राण - महा का अर्थ है- अधिक, प्राण का अर्थ है- वायु। जिन ध्वनियों के उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक वायु का प्रयोग होता है, उन्हें महाप्राण ध्वनि कहते हैं। ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ्, थ्, ध्, फ्, भ् महाप्राण हैं।

9. उदात्त - उदात्त का अर्थ है - ऊपर की ओर उठा हुआ अर्थात् आरोही। उदात्त प्रयत्न मात्र स्वर में संभव है।
10. अनुदान - अदात्त का विपरीत प्रयत्न अनुदान है। यह प्रयत्न नीचे की ओर अर्थात् अवरोही होता है। अनुदान प्रयत्न भी मात्र स्वर में संभव है।
11. स्वरित - इसका अर्थ है - समभावी अर्थात् जिसमें आरोह और अवरोह से रहित समभावी प्रयत्न हो। यह प्रयत्न भी मात्र स्वर संदर्भ में संभव है।

(इ) करण आधार – ध्वनि उत्पादन के उन सहयोगी अंगों को करण कहते हैा, जिनमं गतिशीलता या तरंग होती है। ध्वनि-उत्पत्ति में निम्नलिखित करण गतिशील अंग सहयोगी होते हैं- अधरोष्ठ, जिह्वा, कोमल तालु, स्वर तंत्री।

स्थान –प्रयत्न और करण के आधार पर विभिन्न स्वर-व्यंजन ध्वनियों का विश्लेषण सरलता से कर सकते हैं। इनके आधार पर विभिन्न ध्वनियों को व्यवस्थित रूप में वर्गीकृत भी कर सकते हैं।

प्र) हिन्दी स्वर ध्वनियों के वर्गीकरण पर चर्चा कीजिए।

उ) जिन ध्वनियों के उच्चारण में अन्य किसी ध्वनि का सहयोग आवश्यक न हो तथा उच्चारण अबाध गति से जितनी देर चाहें कर सकते हैं, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं। हिन्दी स्वरों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं-

1. जीभ का कौन-सा भाग करण का कार्य करता है- फेफड़े से बाहर आने वाली निःश्वास वायु से मुख-विवर के विभिन्न रूपों के कारण विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। स्वर उच्चरण-प्रक्रिया में जीभ का अग्र, मध्य अथवा पश्च भाग उठकर सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर हिन्दी स्वरों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।
   (क) अग्र स्वर - इ, ई, ए, ऐ।
   (ख) मध्य स्वर - अ।
   (ग) पश्च स्वर - उ, ऊ, ओ, औ।
2. जीभ का व्यवहृत भाग कितना उठता है - स्वर उच्चारण प्रक्रिया में जीभ के अल्पाधिक रूप से उठने के कारण मुख के खुलने वाली स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन कर सकते हैं।

   (क) विवृत – जब मुख-विवर पूरा खुला हो, जीभ निश्चेष्ट पडी हो; यथा - आ, ऑ।

(ख) अर्ध –विवृत : जब मुख-विवर लगभग पूरा खुला हो, जीभ एक तिहाई उठी हो; यथा – ए, औ।

(ग) अर्ध -संवृत : जब मुख-विवर संकरा हो, जीभ दो तिहाई उठी या चंचल हो, यथा – ए, ओ।

(घ) संवृतः मुख-विवर अत्यंत संकरा हो, जीभ बहुत ऊपर उठी हो या सर्वाधिक चंचल हो; यथा - इ, ई, उ, ऊ।

3. ओठों की स्थिति के अनुसार - उच्चारण में ओठों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्चारण हेतु निःश्वास का भीतरी नियंत्रण जीभ के द्वारा होता है, तो उनका बाहरी नियंत्रण ओठों के द्वारा होता है। ओठों की स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं-

(क) वृत्ताकार - इसे वृत्तमुखी स्वर भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ अल्पाधिक रूप में वृत्ताकार खुलते हैं। ऐसे स्वर हैं - उ, ऊ, ओ, औ।

(ख) अवृत्ताकार - इसे अवृतमुखी भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ खुलकर वृत्ताकार रूप नहीं धारण करते हैं वरन् सामान्य रहते हैं। ऐसे स्वर हैं- इ, ई, ए, ऐ।

(ग) उदासीन – जिन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओठ खुलकर लगभग उदासीन रहते हैं; यथा- अ।

4. मात्रा के अनुसार - उच्चारण में लगने समय को मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार के स्वर मिलते हैा। हिनदी में इनकी संख्या मुख्यतः तीन हैं - ह्रस्वर (अ, इ, उ); दीर्घ – (आ, ई, ऊ); प्लुत -ओ३ (ओ३म्)।

5. कोमल तालु और अलिजिह्वा की स्थिति के अनुसार – ये दोनों अंग कभी नासिक-विवर के मार्ग को पूरी तरह बंद कर देते हैं, जिससे हवा केवल मुख मार्ग से निकलती है। ऐसे में उच्चरित होने वाला स्वर मौखिक होता है। ये अंग कभी मध्य स्थिति में रहते हैं, जिससे वायु मुख तथा नासिक दोनों ही मार्गों से निकलती है। ऐसी ध्वनि को अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। इस तरह स्वरों के दो वर्ग बना सकते हें। (क) मौखिक - अ, आ, ए आदि सभी स्वर।

(ख) अनुनासिक - आँ, एँ।

6. स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ भिन्न-भिन्न स्थिति धारण करती हैं। इस आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत कर सकते हैं।

   (क) घोष – जिन स्वरों के उच्चरण में स्वर-तंत्रियों के निकट आने के कारण वायु घर्षण के साथ बाहर आती है, उन्हें घोष्ज्ञ कहते हैं। प्रायः सभी स्वर घोष होते हैं।

   (ख) अघोष – जिनके उच्चरण के समय स्वर-तंत्रियों के एक-दूसरे से दूर होने के कारण वायु बिना घर्षण के, सरलता से बाहर आती है, उन्हें अघोष स्वर कहते हैं; यथा – विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त इ, उ, ए विशिष्ट ध्वनियाँ।

   (ग) जपित – जब बीमार या कमजोर व्यक्ति फुसफुस करता है, तो वायु स्वर-तंत्रियों से साधारण संघर्ष करती हुई बाहर आती है। इस प्रकार से उच्चरित स्वर ध्वनियाँ जपित होती है।

7. मुख की माँसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चरण मं कभी तो मुख माँसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं, तो कभी शिथिल हो जाती हैं। कुछ ध्वनियों के उच्चरण -समय मांसपेशियों में हल्की दृढ़ता होती है। इय आधार पर स्वरों के शिथिल दृढ़ और मध्यम तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं-

   (क) शिथिल - अ,इ,उ।

   (ख) दृढ़ - औ, ऑ।

   (ग) मध्यम – ए, ओ।

8. संयुक्तता के आधार पर - स्वरों के एक स्थान और एक से अधिक स्थानों के उच्चारण को ध्यान में रखकर उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

   (क) मूल स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्थान पर रहती है; यथा - अ, आ, इ, ई आदि।

   (ख) संयुक्त स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्वर उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है, तो संयुक्त स्वर होते हैं; यथा – ऐ **>** अए, औ **>** अओ आदि।

प्र) स्वनिम क्या है? विस्तार से लिखिए।

उ) भाषावैज्ञानिकों का मानना है कि स्वनिम की कोई सन्तोषजनक परिभाषा अभी तक उपलब्ध नहीं है। ब्लूफील्ड ने **'A minimum unit of distinctive sound feature'** कहकर स्वनिम को व्यवच्छेदक ध्वनि स्वरूप की लघुतम इकाई कहा है। ब्लैक और ट्रिगर ने स्वनिम को

ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ऐसी ध्वनियों का समूह बताया है जो किसी भाषा विशेष के उसीप्रकार के अन्य समस्त समूह व्यतिरेकी एवं अन्यापवर्ती होता है। अर्थात् स्वनिम अर्थभेदक ध्वनि है। स्वनिम उच्चरित भाषा का वह न्यूनतम अंश है जो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट करता है। आसपास के अन्य ध्वनियों के प्रभाव के कारण किसी भाषा की समान गुण और प्रकृतिवाली ध्वनियाँ ही समान रूप से नहीं होती। उदाहरण केलिए -

हिन्दी में एक ध्वनि है 'ला'। यदि हम उलटा 'लो', 'ले, तथा 'ला' शब्दों का सावधानी से उच्चारण करे और जीभ की स्थिति में ध्यान दे तो स्पष्ट होगा- 'ला$_1$' जीभ उलट जाती है। 'ला$_2$ (लो) दांत की ओर आगे है। 'ला$_3$ (ले) और आगे, 'ला$_4$ (ला) और भी आगे। ला ध्वनि के इन शब्दों में चार प्रतिनिधि ल$_1$, ल$_2$, ल$_3$, ल$_4$ । 'ला' सामान्य ध्वनि है। इसके वास्तविक रूप में प्रयुक्त रूप चार है। 'ला' स्वनिम है तथा बाकी उसके उपस्वन हैं।

स्वनिम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-

3. खंड्य स्वनिम : जिन्हें अलग-अलग खंडित किया जा सके। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है।
4. खंड्येतर स्वनिम : इन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं।
   खंड्य स्वनिम के दो उपभेद होते हैं तथा खंड्येतर के पाँच उपभेद होते हैं। इन्हें इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

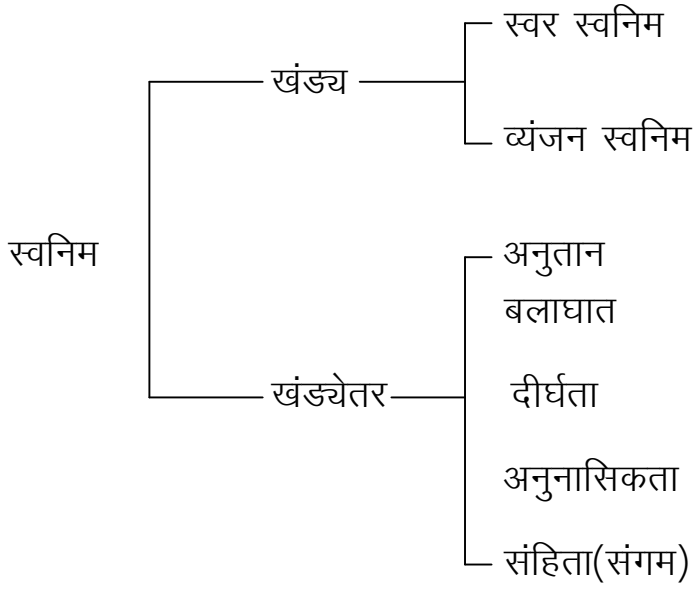

प्र) रूपिम क्या है? उसके वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

उ) रूपिम को रूपग्राम और पदग्राम भी कहते है। जिस प्रकार स्वन-प्रक्रिया की आधार भूत इकाई स्वनिम है, उसी प्रकार रूप प्रक्रिया की आधारभूत इकाई रूपिम है। रूपिम वाक्य-रचना और अर्थ- अभिव्यक्ति की सहायक इकाई है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार, "भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई को रूपग्राम अथवा रूपिम कहते हैं।" रूप या पद वे अवयव या घटक हैं, जिनसे वाक्य बनता है। उदाः 'उसके रसोईघर में सफाई होगी'। इस वाक्य में पाँच पद या रूप हैं, जिन्हें सामानय भाषा में शब्द कहते हैं। यह रूपों में सभी एक प्रकार के नहीं हैं। कुछ तो छोटे से छोटे टुकड़े हैं, उन्हें और छोटे खंडों में नहीं विभाजित किया जा सकता जैसे 'में'। कुछ को छोटे खंडों में बाँटा जा सकता है, जैसे रसोईघर को 'रसोई' और 'घर' में। यदि घर को और छोटे टुकड़ों में बाँटना चाहे तो 'घ' और 'र' कर सकते हैं, यद्यपि इनमें न तो 'घ' का कोई अर्थ है और न 'र' का, इसलिए ये दोनों खंड तो हैं, किन्तु सार्थक नहीं हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त वाक्य में उस, के, रसोई, घर, में, साफ, ई, हो, ग, ई ये दस रूपिम हैं।

भाषा अथवा वाक्य में प्रयुक्त रूपिमों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनको कई आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं-

1. प्रयोग आधार - वाक्य में रूपिम कभी स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होते हैं, तो कभी किसी वाक्यांश के साथ प्रयुक्त होते हैं। रूपिम की इन प्रयोग-प्रवृत्तियों के आधार पर इन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

   (क) मुक्त रूपिम - वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने वाले रूपिम को मुक्त रूपिम की संज्ञा दी जाती है। (उपर्युक्त वाक्य में रसोई,घर, साफ़ इसी प्रकार के हैं।) ये अलग, मुक्त या स्वतंत्र रूप से भी आ सकते हैं (जैसे रसोई बन चुकी है) और अन्य रूपिमों के साथ भी आ सकते हैं (जैसे रसोईघर)।

   (ख) बद्ध रूपिम – ऐसे रूपिम जो शब्द में किसी अन्य रूपिम के साथ प्रयूक्त होते हैं, इन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं। इनका प्रयोग स्वतंत्र रूप में नहीं होता है। (जैसे 'ता' एकता, सुन्दरता या 'ई'घोड़ी, लड़की, खड़ी आदि।)।

   (ग) मुक्तबद्ध रूपिम - इसे अर्द्धमुक्त, अर्द्धबद्ध और बद्धमुक्त रूपिम भी कहते हैं। इस वर्ग में ऐसे रूपिम को रखते हैं, जो प्रायः देखने में स्वतंत्र लगते हैं, किंतु वे किसी न किसी

वाक्यांश से जुड़े होते हैं। ऐसे रूपिम को संबंध तत्त्व के रूप में भी देख सकते हैं, जिनका प्रयोग अर्थ तत्त्व संबंधित रूपिम के साथ होता है। जैसे – (ने - उस ने/उसने, मनु ने), (को - उन को/उनको), (से - मुझ स/मुझसे) सर्वनाम रूपिमों के साथ ऐसे रूपिम मुक्त और बद्ध दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे- उसने-उस ने, उनको- उन को आदि।

2. संरचना के आधार पर- रूपिमों को अर्थ संरचना की दृष्टि से मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

(क) मूल रूपिम – जिन रूपिमों की रचना मात्र अर्थतत्त्व के माध्यम से होती है, उन्हें मूल रूपिम कहते हैं। ऐसे रूपिमों के संबंध तत्त्व की कोई भूमिका नहीं होती है। जैसे – गाय, दिन, घड़ी आदि।

(ख) संयुक्त रूपिम – जब दो या दो से अधिक रूपिम एक साथ प्रयुक्त हों और उनमें एक अर्थतत्त्व आधारित हो शेष रूपिम उपसर्ग या प्रत्यय आधारित हों, तो उसे संयुक्त रूपिम कहते हैं। जैसे- लड़कियाँ - लड़की (मूल रूपिम) इयाँ (बहुवचन प्रत्यय आधारित रूपिम)

(ग) मिश्रित रूपिम – जब दो या दो से अधिक मूल अथवा अर्थतत्त्व आधारित रूपिम एक साथ प्रयुक्त हों, तो उसे मिश्रित रूपिम की संज्ञा दी जाती है। जैसे- मालगाड़ी - माल (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम) गाड़ी (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम)

3. अर्थ एवं कार्य व्यापार- जब रूपिम में अर्थतत्त्व अथवा संबंधतत्त्व के माध्यम से भावाभिव्यक्ति संभव हो, तो उक्त आधार पर रूपिमों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

(क) अर्थदर्शी रूपिम – जब वाक्य में रूपिम मात्र अर्थतत्त्व पर आधारित होता है, तो उसे अर्थदर्शी रूपिम कहते हैं।

(ख) संबंधदर्शी रूपिम – जब वाक्य में रूपिम मात्र संबंध-तत्त्व पर आधारित होता हैं, तो उन्हें संबंधदर्शी रूपिम कहते हैं। जैसे-

वचन आधारित रूपिम : ए- लड़के, ओं - लड़कों, इयाँ- लड़कियाँ।

लिंग आधारित रूपिम : आ- लड़का, ई - लड़की।

कारक आधारित रूपिम : ने - लड़कों ने, को - लड़कों को, का - लड़कों का।

काल आधारित रूपिम : गा- जाएगा, या – गया।

4. खंड आधार- कुछ रूपिमों के खंड किए जा सकते हैं, तो कुछ अखंड्य होते हैं। इस आधार पर रूपिम को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

(क) खंड्य रूपिम – जिन रूपिमों के दो या दो से अधिक खंड किए जा सकते हैं, उन्हें खंड्य रूपिम कहते हैं। उदाः डाकघर – डाक/घर।

(ख) अखंडय रूपिम – जिन रूपिमों के सार्थक खंड न किए जा सकें। उदा : बलाघात, सुर, सुरलहारी।

प्र) वाक्यविज्ञान का विस्तार से परिचय दीजिए।

उ) 'वाक्यविज्ञान' में वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनाने की प्रक्रिया का वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन होता है। वर्णनात्मक वाक्यविज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य-गठन का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी में दो या अधिक भाषाओं का वाक्य-गठन की दृष्टि से किये गये अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है। ऐतिहासिक वाक्यविज्ञान में एक भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य-गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

वाक्य को प्रायः लोक सार्थक शब्दों का समूह मानते हैं, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो। वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनता है। पद जब वाक्य का रूप धारण कर लेते हैं तो वे अपनी सत्ता खो बैठते हैं व वहाँ वाक्य ही विराजमान हो जाता है।

प्राचीन आचार्यें ने इस पर काफी विचार किया है। फलस्वरूप इन विचारों की परिणति यह हुई कि वाक्य की मीमांसा करते हुए चिंतक दो धाराओं में बँट गए और इससे दो विपरीत विचारधारएँ प्रवाहित होने लगीं। ये विचारधाराएँ इस प्रकार हैंः 1. अभिहितान्वयवाद (पदवाद), 2. अन्वितभिधानवाद (वाक्यवाद)।

अभिहितान्वयवाद : इस मत के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य में 'पद' का महत्त्व है। अतः पद की सत्ता होती है, वाक्य की नहीं, क्योंकि पदों को जोड़ने से ही वाक्य बनता है। यदि पद ही नहीं तो वाक्य कैसे बन सकता है। इसलिए पद ही महत्त्पूर्ण है।

अन्वितभिधानवाद : इस विचारधारा के समर्थक यह मानते हैं कि वाक्य तोड़ने से ही पद बनते हैं। अतः वाक्य का ही महत्त्व है। पद तो इसका एक हिस्सा मात्र है। पद की अलग से कोई सत्ता ही नहीं है। इसलिए इस विचारधार के समर्थकों को वाक्यवादी भी कहते हैं।

वाक्य की विशेषताएँ –

1. वाक्य शब्दों का समूह हैः यद्यपि यह माना जाता है कि वाक्य पदों या शब्दों का समूह होता है, परन्तु नाटक आदि के संवाद या वार्तालाप में केवल एक शब्द का भी वाक्य हो सकता है। उदाहरण- मोहन, तुमने दवाई खा ली? मोहन-हाँ। यहाँ 'हाँ' पूर्ण वाक्य का अर्थ देता है अर्थात् हाँ, मैंने दवाई खा ली है।
2. वाक्य भाषा की प्राकृतिक इकाई हैः भाषा में लघुतम इकाई ध्वनि को माना जा सकता है। ध्वनि से शब्द, शब्द से पद और पदों के समूह से वाक्य बनता है। परन्तु ये सभी कृत्रिम इकाइयाँ हैं। भाषा की प्राकृतिक एवं सहज इकाई वाक्य ही मानी जाती है।
3. व्याकरणिक दृष्टि से पूर्णः वाक्य प्रायः व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण होते हैं। व्याकरण की अपूर्णता से सही अर्थ सम्प्रेषित नहीं होता है, इसलिए उसे वाक्य कहना तर्कसंगत नहीं होता है।
4. वाक्य में क्रिया की अनिवार्यताः वाक्य में क्रिया या सहायक क्रिया अथवा समापिका क्रिया प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनिवार्यतः होती है। जहाँ एक शब्द में वाक्य की अनुभूति होती है ऐसे वाक्य में भी क्रिया छिपी रहती है। ऐसी छिपी हुई क्रिया की स्थिति को परोक्ष क्रिया के नाम से जाना जाता है1

भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए 5 बातें आवश्यका हैंः सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति।

1. सार्थकता - सार्थकता का आशय यह है कि वाकय के शब्द सार्थक होने चाहिए।
2. योग्यता – योग्यता का आशय यह है कि शब्दों की आपस में संगति बैठे। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता हो। उदाः 'वह पेड़ को पत्थर से सींचता है' वाक्य में शब्द तो सार्थक हैं, किन्तु पत्थर से सींचना नहीं होता, इसलिए शब्दों की परस्पर योग्यता की कमी है, अतः यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है उलटबाँसी भले हो।

3. आकांक्षा - आकांक्षा का अर्थ है 'इच्छा'। अर्थात् 'जानने की इच्छा', अर्थात् 'अर्थ की अपूर्णाता'। वाक्य में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह पूरा अर्थ दे। उसे सुनकर भाव पूरा करने के लिए कुछ जानने की आकांक्षा न रहे।
4. सन्निधि या आसत्ति - इसका अर्थ है समीपता। वाकय के शब्द समीप होने चाहिए। उपर्युक्त सभी बातों के रहने पर भी, यदि एक शब्द आज कहा जाय, दूसरा कल और तीसरा परसों तो उसे वाक्य नहीं कहा जाएगा।
5. अन्विति - इसका अर्थ है व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अंग्रेज़ी में इसे **concordance** कहते हैं। विभिन्न भाषाओं में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। यह समानरूपता प्रायः वचन, कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है।

वाक्य के अंग-

वाक्य के दो अंग होते हैंः

1) उद्देश्य **Subject** - वाक्य काक वह अंग अथवा अंश जिसके बारे में वाक्य के शेषांश में कुछ कहा गया हो। जैसे 'लड़का गया' में 'लड़का'। उद्देश्य में 'केन्द्रीय शब्द' तथा 'उसका विस्तार' आ सकता है। 'लड़का गया' में 'लड़का' केन्द्रीय शब्द है, किन्तु 'राम का लड़का गया' में 'राम का' उसका विस्तार है और उद्देश्य है 'राम का लड़का'।
2) विधेय **Predicate** - वाक्य का वह अंश है जो उद्देश्य के बारे में सूचना दे। इसमें क्रिया और उसका विस्तार होता है। 'लड़का गया' में 'गया', 'लड़का घर गया' में 'घर गया' तथा 'लड़का अभी घर गया है' में 'अभी घर गया है' विधेय है।

वाक्यों के प्रकार-

वाक्यों के प्रकारों के अथवा विभाजन के कई आधार हैं, परन्तु भाषाविज्ञानियों ने इसके मुख्यतः दो आधारों को मान्यता दी है। 1) आकृतिमूलक, 2) रचनागत

आकृतिमूलक प्रकारों के भी दो भेद हैंः 1. योगात्मक, 2.अयोगात्मक।

1. योगात्मक : वह है जहाँ शब्दों को वाक्य से अलग करना कठिन है, जैसे मैक्सिकन भाषा में एक वाक्य है – 'नीनकक' अर्थात् 'मैं मांस खाता हूँ। इस 'नीनकक' अर्थात् इस वाक्य को अलग-अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'क –खाना, नकल्ल - मांस, नेवल्ल- मैं'। अतः ऐसे वाक्य को योगात्मक वाक्य की श्रेणी में रखा जाता है।
2. अयोगात्मक : अयोगात्मक वाक्य में, वाक्य से शब्दों को अलग -अलग किया जा सकता है, जैसे 'मैं विद्यालय जाता हूँ'। यहाँ कर्ता, कर्म और क्रिया की संगति है। इसलिए यह वाक्य है। यदि क्रम बदल दें तो भी वह वाक्य अर्थ देगा जैसे 'विद्यालय जाता हूँ मैं'। परन्तु कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जिनका क्रम बदल देने से वे वाक्य अर्थ बदल देते हैं, जैसे – 'राम ने रावण को मारा' 'रावण ने राम को मारा' इस प्रकार कर्ता का स्थान बदलने से अर्थ भी बदल जाता है।

वाक्य के रचनागत प्रकार

1. सरल वाक्य
2. अपवाक्य
3. मिश्र वाक्य
4. संयुक्त वाक्य

3. सरल वाक्य - सरल वाक्य उसे कहा जाता है जिसमें एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है। जैसे 'मोहन गया'। ऐसे सरल वाक्य के भी पाँच भेद होते हैं, जैसेः

   क. अकर्मकीय - सौरभ हँसता है। इसमें कर्म नहीं है। कतौ और क्रिया है।

   ख. एक कर्मकीय - इनमें एक कर्म होता है, जैसे मोहन खाना खाता है। इसमें मोहन 'कर्ता' है, 'खाना' कर्म है तथा 'खाता है' क्रिया है। इस प्रकार इस वाक्य में सिर्फ एक कर्म है – खाना।

   ग. द्विकर्मकीय - इसमें दो कर्म होते हैं - मोहन श्याम को खत लिखता है। इसमें दो कर्म हैं।

   घ. कर्तृ पूरकीय – घर सुंदर है। कर्ता का पूरक वाक्य है।

   ङ . कर्म पूरकीय - मोहन श्याम को मूर्ख बनाता है यह कर्म पूरकीय वाक्य है।

4. उपवाक्य – जब एक ही वाक्य में दूसरा वाक्य मिला हो तो एक मुख वाक्य होता है तथा दूसरा गौण वाक्य होता है। ऐसे दो एक साथ जुड़े वाक्यों को उपवाक्य कहते हैं, जैसे वह व्यक्ति चला गया जो सबसे महान था। इस वाक्य में वह व्यक्ति चला गया – प्रधान उपवाक्य है तथा जो सबसे महान् था – गौण उपवाक्य है। इस प्रकार दो वाक्यों के योग से बना वाक्य उपवाक्य कहलाता है। इस उपवाक्य के भी दो प्रमुख प्रकार होते हैं-

   क. प्रधान उपवाक्य (मुख्य उपवाक्य)

   ख. आश्रित उपवाक्य (गौण उपवाक्य)

   आश्रित उपवाक्य को भी 3 भागों में विभाजित किया जाता है। -

5. संज्ञा उपवाक्य : कर्म या पूरक रूप में संज्ञा का काम करने वाले उपवाक्य संज्ञा उपवाक्य कहलाते हैं। जैसे - मैं जानता हूँ कि वह नहीं आ सकता।
6. विशेषण उपवाक्य : संज्ञा की विशेषता बताने वाले उपवाक्य को इस वर्ग में लिया जाता हैं। जैसे - वही छात्र उत्तीर्ण होगा जो परिश्रम करेगा।
7. मिश्र वाक्य : मिश्र वाक्य उसे कहा जाता है जिसमें एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या अधिक उपवाक्य हों। उदाहरण के लिए यह वाक्य देखें -मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह परीक्षा में सफल हो।
8. संयुक्त वाक्य : वाक्य रचना का एक ऐसा रूप भी है जिसमें न तो प्रधान उपवाक्य हो और न ही आश्रित उपवाक्य। जैसे – 'बूँद रेत में गिरी और विलीन हो गई।'

इस प्रकार के वाक्यों के अनेक भेदोपभेद होते हैं। जैसे – 1. निषेधात्मक, 2. विधानात्मक, 3. प्रश्नवाची, 4. विस्मयबोधक, 5. आज्ञासूचक, 6. संदेहसूचक, 7. इच्छासूचक। वाक्यों में कुछ वाकय ऐसे भी होते हैं जिनमें क्रिया का प्रयोग नहीं होता है। ऐसे वाक्यों को क्रियाविहीन वाक्य कहा जाता है, लेकिन जिन वाक्यों में क्रिया होती है वे क्रियायुक्त वाक्य कहलाते हैं।

प्र) ध्वनियंत्र क्या है? इसके विभिन्न अंगों का परिचय दीजिए।

उ) मनुष्य निरंतर साँस लेता और छोडता रहता है। जिस साँस को हम बाहर छोडते है, उससे ध्वनि की सृष्टि होती है। फ़ेफडे से निकलकर श्वासनालिका से बाहर आनेवाली हवा कंठ और मुँह के विभिन्न अंगों का स्पर्श करते हुए मुँहविवर और नासिकाविवर से होकर जब बाहर जाती है, तब ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रक्रीया में फ़ेफडे से लेकर मुँहविवर तक के जो-जो अंग सहायक बनते है उन सबका सामूहीक नाम है ध्वनियंत्र। ध्वनियंत्र के विभिन्न अंगा निम्मलिखित हैं-

- ओंठः वाग्यंत्र का सबसे बाहर स्थित दृश्यमान अंग है ओंठ। दोनों ओंठों में से निचला ओंठ ध्वनि के उच्चारण में बहुत सक्रीय है।
- दंतपंक्तियाँः ओंठों के पीछे ऊपर –नीचे एक-एक दंत पंक्ति है। इनमें ऊपरी पंक्ति के दांत ध्वनि के उच्चारण में सक्रीय भाग लेते हैं।
- तालूः मुँहविवर की ऊपरी दीवार को तालू कहते हैं। कंठ से दांतों के पीछे तक फैली हुई तालू के चार भाग होते हैं-
    - वर्त्सः दांत और कठोर तालू के बीच के हिस्से को वर्त्स कहते है।
    - कठोरतालूः वर्त्स के पीछे की कठोर खुरखुरी जगह कठोरतालू है। यह हड्डियों से निर्मित है। ऊपर से एक पतला मांस आवरण होने पर यहाँ का स्पर्श कठोर लगता है।
    - मूर्धाः यह मुँहविवर के अन्तर का सबसे ऊँचा स्थान है। कठोरतालू और कोमलतालू के बीच के जगह को ही मूर्धा कहते है।
    - कोमलतालूः मूर्धा के पीछे अलिजिह्वा के आगे तालू का कोमल भाग कोमलतालू कहलाता। सचमूच यह मुँहविवर और नासिकाद्वार के बीच एक किवाड-का-सा काम करता है।
- जीभः मुँहविवर के निचले हिस्से में जीभ की स्थिति है। उच्चारण अवयवों में सबसे प्रमुंख अंग है जिह्वा। जिह्वा की गति और उसके अंगों के कार्य वैविध्य के कारण उसके पाँच भाग है- जिह्वानोक, जिह्वाग्र, जिह्वापश्च, जिह्वामध्य, जिह्वामूल।

- अलिजिह्वाः नासिकाद्वार और मुँहविवर के बीच स्थित छोटी सी जीभी को अलिजिह्वा कहते है। जरूरत के अनुसार नासिका-विवर को पूर्ण या आंशिक रूप से बन्द करना अलिजिह्वा का कर्म है।
- अभिकाकलः यह श्वासनालिका के ऊपर झुका हुआ एक मांसपिण्ड है, जो खाना खाते समय और पानी पीते समय श्वासनालिका को बन्द कर देता है। इसको स्वरयंत्रमुख आवरण भी कहते है।
- स्वरयंत्रः श्वासनालिका के ऊपरी भाग में एक छोटा-सा बक्स जैसा अंग है, जिसे स्वरयंत्र कहते हैं। स्वरयंत्र के अन्तर स्वरतंत्रियाँ है। ये स्वरतंत्रियाँ पतली, झिल्ली के आवारण से बनी है। स्वरतंत्रियाँ रंगमंच के पर्दों के समान दो हिस्सों में बंटी है।
- काकलः स्वरतंत्रियों के बीच के अवकाश को काकल कहते है। आवश्यकतानुसार स्वरतंत्रियाँ खुलती या बन्द होती है। अतः काकल के विस्ता में भी अन्तर होता है।
- मुँहविवरः कंठ से लेकर ओंठ तक फैला हुआ मुँह का भाग मुँहविवर है। इसके नीचे जीभ है ऊपर एक दीवार की तरह तालू है। मुँहविवर में ही ध्वनियों को विभिन्न काकार मिलते है।
- नासिकाविवरः मुँहविवर के ऊपर अलिजिह्वा के पीछे से नासिकाग्र तक फैले हुए विवर को नासिकाविवर कहते हैं।
- कंठ (ग्रसनी)ः स्वरयंत्र, जिह्वामूल और नासाद्वार के आरंभ के बीच की जगह को कंठ कहते हैं।
- फेफडाः ध्वनि का उच्चारण करते समय दोनों फेफडे वायु को बाहर निकालते रहते हैं। फेफडे से निकलनेवाली वायु श्वासनालिका के रास्ते से मुँहविवर में प्रवेश करते है